॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

मार्च २०१६

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५४
अंक ३

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं

विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर,
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. श्रीरामकृष्णध्यानम् १०३
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) १०३
३. विविध भजन
रामकृष्ण पद कमल में (स्वामी आत्मानन्द), आए प्रभु आज आनन्द सब ओर (स्वामी वागीश्वरानन्द), रामकृष्ण पद राई (स्वामी रामतत्त्वानन्द) नाचत भोला त्रिभुवन में (स्वामी प्रपत्त्यानन्द) १०४
४. सम्पादकीय : दयाल ठाकुर रामकृष्ण मम १०५
५. त्याग और पवित्रता के आदर्श : श्रीरामकृष्ण (स्वामी विवेकानन्द) १०७
६. धर्म-जीवन का रहस्य (८/५) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) १०८
७. भूखा है भगवान मेरा (निर्मला देशपांडे) ११२
८. सारगाछी की स्मृतियाँ (४१) (स्वामी सुहितानन्द) ११३
९. स्वामी ब्रह्मानन्द के संस्मरण (स्वामी अम्बिकानन्द) ११५
१०. शास्त्रमय श्रीरामकृष्ण (स्वामी कृतार्थानन्द) ११८
११. आध्यात्मिक जिज्ञासा (३) (स्वामी भूतेशानन्द) १२२
१२. साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद् (१३) (स्वामी आत्मानन्द) १२४
१३. स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त (हर व्यक्ति अपने स्थान पर महान है) १२६
१४. जय जय रामकृष्ण भगवान (कविता) (स्वामी समर्पणानन्द) १२८
१५. युगपुरुष अवतार हो (कविता) (सतीश कुमार) १२८
१६. बच्चों का आंगन १२९

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

१७. काश हममें भी ऐसी संवेदना होती १३०
१८. साधक-जीवन कैसा हो? (१५)
(स्वामी सत्यरूपानन्द) १३१
१९. रामकृष्ण संघ के संन्यासियों के जीवन की दिव्य झलकियाँ (३) १३३
२०. प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका (श्रीशंकराचार्य) १३५
२१. मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प
(डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) १३६
२२. भारत की ऋषि परम्परा (३)
(स्वामी सत्यमयानन्द) १३७
२३. गुरु के चरणों में भगिनी निवेदिता
(स्वामी तन्निष्ठानन्द) १३९
२४. काशी के बनबाबा (स्वामी अप्रमेयानन्द) १४१
२५. समाचार और सूचनाएँ (वार्षिक रिपोर्ट) १४३

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण-पृष्ठ पर दिया गया मन्दिर बेलूड़ मठ का श्रीरामकृष्ण मन्दिर है। बेलूड़ मठ विश्वव्यापी रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन का मुख्यालय है। यह हावड़ा (पश्चिम बंगाल) में गंगा के पश्चिम में ४० एकड़ के क्षेत्र में स्थित है। श्रीरामकृष्ण देव के अनन्यतम शिष्य यतिराज स्वामी विवेकानन्द ने अपने अन्तिम दिन इसी पावन स्थल पर बिताए थे। स्वामीजी ने १८९८ में श्रीरामकृष्ण देव के पूत अस्थिविशेष पात्र को कन्धे पर लाकर बेलूड़ मठ की स्थापना की थी।

इस भव्य मन्दिर का निर्माण श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य और स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज ने किया था। इस मन्दिर का प्रारूप स्वामी विवेकानन्द जी ने ही बनाया था। उन्हीं के अनुसार इसका निर्माण विज्ञानानन्द जी ने किया। इसका लोकार्पण भी स्वामी विज्ञानानन्द जी के कर-कमलों से ही १४ जनवरी, १९३८ को हुआ। यह मन्दिर सभी धर्मावलम्बियों, सभी वर्णों, सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए खुला है। यह मन्दिर सर्वधर्म-समन्वय का प्रतीक है। यहाँ देश-विदेश से लोग आते हैं और शान्ति प्राप्त करते हैं। बेलूड़ मठ के परिसर में श्रीरामकृष्ण देव के मन्दिर के अतिरिक्त श्रीमाँ सारदा, स्वामी ब्रह्मानन्द जी, स्वामी विवेकानन्द जी का भी मन्दिर है, जहाँ भक्त दर्शन कर अपना जीवन कृतार्थ करते हैं।

आवरण पृष्ठ पर श्रीरामकृष्ण के सभी सोलह संन्यासी शिष्यों का चित्रांकन है ।

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है। **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं। **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें। **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें। **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

मार्च माह के जयन्ती और त्योहार

०७	महाशिवरात्रि
१०	श्रीरामकृष्ण परमहंस
२३	श्रीचैतन्य महाप्रभु, होली
२६	शिवाजी जयन्ती
२७	स्वामी योगानन्द

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५४ मार्च २०१६ अंक ३

श्रीरामकृष्णध्यानम्

हृदयकमलमध्ये राजितं निर्विकल्पं
सदसदखिलभेदातीतमेकस्वरूपम् ।
प्रकृतिविकृतिशून्यं नित्यमानन्दमूर्तिं
विमलपरमहंसं रामकृष्णं भजामः ।।

– हम विमल परमहंस श्रीरामकृष्ण देव का भजन करते हैं, जो हृदयकमल के मध्य में विराजित हैं, सत्-असत् के सभी भेदों से परे एक हैं, प्रकृति-विकृतिरहित नित्य आनन्दमूर्ति हैं।

निरुपममतिसूक्ष्मं निष्प्रपञ्चं निरीहं
गगनसदृशमीशं सर्वभूताधिवासम् ।
त्रिगुणरहितसच्चिद्ब्रह्मरूपं वरेण्यं
विमलपरमहंसं रामकृष्णं भजामः ।।

– जो उपमारहित अतिसूक्ष्म और प्रपंचरहित हैं, जो आकाशवत् सर्वप्राणियों में व्याप्त, त्रिगुणातीत सच्चित् ब्रह्मस्वरूप हैं, हम विमल परमहंस श्रीरामकृष्ण देव का भजन करते हैं।

वितरितुमवतीर्णं ज्ञानभक्तिप्रशान्तीः
प्रणयगलितचित्तं जीवदुःखासहिष्णुम् ।
धृतसहजसमाधिं चिन्मयं कोमलाङ्गं
विमलपरमहंसं रामकृष्णं भजामः ।।

– जीवों के दुखों से द्रवित होकर जिन्होंने इस धरा पर ज्ञान, भक्ति का वितरण करने के लिये अवतार लिया है, ऐसे कोमलांग चिन्मय सहजसमाधिस्थ विमल परमहंस श्रीरामकृष्ण देव का हम भजन करते हैं।

पुरखों की थाती

यदाऽसत्संगरहितो भविष्यसि भविष्यसि ।
तदाऽसज्जनगोष्ठीषु पतिष्यसि पतिष्यसि ।।४९२।।

– जब तक तुम दुष्टों के संग से दूर रहते हो, तब तक जीवन ठीक-ठाक चलेगा और जब तुम दुष्टों की बातों में आ जाते हो, तो महा-दुर्गति को प्राप्त होओगे।

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव हि ।।४९३।।

– जो व्यक्ति निश्चित वस्तुओं को छोड़कर अनिश्चित वस्तुओं की ओर दौड़ता है, उसे अनिश्चित पदार्थ तो अप्राप्त ही था, उसका निश्चित पदार्थ भी खो जाता है।

यौवनं धन-सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकम् अप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ।।४९४।।

– यौवन, धन-सम्पत्ति, अधिकार और अविचार – इनमें से एक भी हो, तो बड़े अनर्थ की सृष्टि करता है; तो फिर जिस व्यक्ति में चारों एक साथ विद्यमान हों; उसकी जो दुर्गति होनेवाली है, उसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

यस्य मित्रेण सम्भाषो यस्य मित्रेण संस्थितिः ।
यस्य मित्रेण संलापस्ततो नास्तीह पुण्यवान् ।।४९५।।

– जिसकी मित्र के साथ बातें होती है, जिसका मित्र के साथ रहना होता है और जिसकी मित्र के साथ चर्चाएँ होती हैं, उससे बढ़कर पुण्यात्मा इस संसार में और कोई नहीं है।

विविध भजन

रामकृष्ण पद कमल में

स्वामी आत्मानन्द

रामकृष्ण पद कमल में रमो रे मन-मधुप मोर।
काँटों से भरी बिषय केतकी उसे देख मत होना विभोर।।
जनम-मरन विषम व्याधि इसे कब तक सहोगे और।
श्रीपद प्रेम पीयूष पीओ भव यातना रहे ना और।।
धर्माधर्म सुख-दुख शान्तिज्वाला द्वन्दों में है कभी न निस्तार,
ज्ञान खड्ग से अति यत्न से काट लो काट लो करम डोर।
'रामकृष्ण' नाम बोलो रे मुख से मोह निशा जा होएगी भोर।
दुःस्वप्न तेरे कटेंगे कटेंगे, टूटेगी तेरी खुमारी घोर।।

आए प्रभु आज आनन्द सब ओर

स्वामी वागीश्वरानन्द

आए प्रभु आज आनन्द सब ओर।
छाया नव प्रकाश, तम का हुआ नाश,
चित में जगे आश, बीती निशा घोर।।
सोते जगे भाग, मन का खिला बाग,
अंग-अंग अनुराग, होवत हिय विभोर।।
टूटे सकल बन्ध, भय ताप दुख द्वंद,
आनन्द घन देख, सुखमग्न मन मोर।।
आओ महाराज, हिय में बसो आज,
पूरन करो काज, हे भक्तचित्तचोर।।

रामकृष्ण पद राई

स्वामी रामतत्त्वानन्द

भजो रे भैया रामकृष्ण पद राई।
जिन चरणन को ध्यान लगावत नित पल सारदा माई।
सोइ चरणन दुइ लखि–गौरी, दौड़-दौड़ चली आई।।
सोइ चरण नरेन्द्र चित्त लायो, तज कपट चतुराई।
बन विवेकानन्द स्वामी विश्व विजय कर आई।।
जो चरण बलरामजी परसे तज तन प्रभु पद जाई।
सोइ चरण गोपाल की मैया, चलत कन्ध लटकाई।।
जो चरण धावत भक्तन घर करन पावन अँगनाई।
तज विषय रस भज सोई पद मन नित चित्त लगाई।।

नाचत भोला त्रिभुवन में

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

डिम डिम डिम डिम डमरू बजावत
नाचत भोला त्रिभुवन में।
आओ आओ हे शिवशंकर
बस जाओ मोरे नयनन में।।
हाथ त्रिशूल बैल सवारी,
सिर पे गंगा बहे हहकारी।
गले नाग रहे फुफकारी,
चन्द्रमा चमके ललाटन में।।

वाम भाग माँ गौरी राजे,
भस्म-विभूति अंग में साजे।
भूत-पिशाच हैं संगी तेरे,
भांग खाय रत नर्तन में।।

ताण्डव नृत्य तेरा भयकारी,
भयत्रस्त जगत नर-नारी।
सुर-नर-मुनि सबके हितकारी,
लो प्रणाम प्रभु चरणन में।।

कण्ठ में तेरे भरा हलाहल,
हृदय में श्रीराम-पद-कमल।
गौरी, गणेश कार्तिक के संग,
ऋषि मुनि वन्दे छन्दन में।।

डमरू बाजे डम डम डम,
मृदंग बोले हर हर बम।
भक्त बोलें ॐ नमो शिवाय,
हम हैं तेरे शरणन में।।

हे शिव-शंकर अन्तर्यामी,
सारे जग के तुम हो स्वामी।
हमें है केवल एक आसरा,
लिया शरण तव चरणन में।।

सम्पादकीय

दयाल ठाकुर रामकृष्ण मम

भूमडण्ल पर पूज्य, सुर-नरवांछित, ऋषि-मुनिशंसित भारत भूमि विश्ववन्द्य है। इस महान धरा पर अनादि काल से समय-समय पर अवतारों, आचार्यों, ऋषि-मुनियों का आविर्भाव होता रहा है। इन सबने समय-समय पर भारतवासी के साथ-ही-साथ विश्व के वासियों का पथ-प्रदर्शन कर उनके जीवन को धन्य किया है और भारतभूमि को गौरवान्वित किया।

जब-जब समाज पथ-च्युत हुआ, जब-जब समाज पथ-भ्रमित हुआ, जब-जब देश दिशाहीन हुआ, जब-जब विश्व-मानवता संकट में पड़ी, जब-जब प्राणियों पर अत्याचार हुआ, जब-जब व्यक्ति नृशंसता का शिकार हुआ, जब-जब व्यक्ति अपने अन्त:स्थ शत्रुओं से पीड़ित हुआ, तब-तब भगवान नारायण ने कभी श्रीराम के रूप में, कभी श्रीकृष्ण के रूप में, कभी बुद्ध के रूप में, विभिन्न अवतारों के रूप में अवतार लेकर रावण, कुम्भकर्ण, कंस आदि जैसे अत्याचारियों का वध कर ऋषियों को अत्याचार से मुक्त कर उनके यज्ञ को सम्पन्न करने में सहायता की। भगवान श्रीकृष्ण ने राजबन्दीगृह में पड़े अनेक राजाओं और अन्य प्रजा को कंस के अत्याचारों से मुक्त किया। दुर्योधन आदि कौरव वंश का सर्वनाश कर समाज में न्याय और समरसता की स्थापना की। पृथ्वी पर सत्य, न्याय, धर्म और ईश्वरीय सत्ता की, ईश्वरीय आस्था और श्रद्धा की पुनर्स्थापना की।

रामचरितमानस में भगवान श्रीराम-अवतरण का प्रयोजन बताते हुए भगवान शंकर माँ पार्वतीजी से कहते हैं –

जब जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।। १/१२०/६-८
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु।।१/१२१

– जब-जब धर्म का ह्रास होता है और नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं। वे घोर अत्याचार करते हैं, उनसे गो, द्विज, देव और धरणी कष्ट पाती हैं, तब-तब वे कृपानिधान प्रभु विभिन्न शरीर-धारण कर सज्जनों का कष्टहरण करते हैं। वे असुरों का संहार कर देवों को प्रतिष्ठित करते हैं, वेदों की मर्यादा की रक्षा करते हैं और जग में अपने पावन यश का विस्तार करते हैं, यही भगवान श्रीराम के अवतार का उद्देश्य है।

तुलसीदासजी रामचरितमानस (१/१४४/४,७) में लिखते हैं –

अगुन अखण्ड अनन्त अनादी।जेहि चिंतहि परमारथबादी।।
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा।
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई।।

अर्थात् निर्गुण अखण्ड परमात्मा भी भक्ति से भक्तहित हेतु लीला-शरीर ग्रहण करते हैं।

कुरुक्षेत्र की रणभूमि में जब भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन की हताशा को दूर करने के लिये गीता सुनाई। उसमें उन्होंने योग के सन्दर्भ में अपनी पुरातनता का उल्लेख किया। तब अर्जुन के मन में जिज्ञासा हुई। उन्होंने श्रीकृष्ण से पूछा, आपका जन्म तो अभी का है और आप प्राचीन विवस्वत सूर्य को योग कहने की बात कर रहे हैं, यह कैसे सम्भव है? अर्जुन की इस जिज्ञासा पर भगवान मधुसूदन ने अपने युग-युग में लिये अवतार और अवतार के उद्देश्य का रहस्योद्घाटन किया –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।।४-७,८।।

– हे अर्जुन ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं सज्जनों के परित्राण करने, दुर्जन, दुराचारियों का विनाश करने और धर्म की स्थापना के लिये युग-युग में अवतार लेता हूँ।

श्रीमद्भागवत (१०/१४/२०) में ब्रह्माजी स्वयं अवतारोद्देश्य का उल्लेख करते हुए कहते हैं –

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च।।

– हे जगन्नियन्ता विधाता प्रभु ! आप अजन्मा हैं, तथापि देवता, ऋषि, मनुष्य, तिर्यक् और जलचरादि योनियों में आपके जो अवतार होते हैं, वे असत्पुरुषों, दुर्जनों के

मद का विनाश और सत्पुरुषों, सज्जनों पर कृपा करने के लिये ही होते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण के अवतार-कारण का उल्लेख करते हुए श्रीशंकराचार्यजी श्रीमद्भगवद्गीता-भाष्य के उपोद्घात में लिखते हैं – **दीर्घेण कालेन अनुष्ठातॄणां कामोद्भवाद् हीयमानविवेकविज्ञानहेतुकेन अधर्मेण अभिभूयमाने धर्मे प्रवर्धमाने च अधर्मे, जगतः स्थितिं परिपिपालयिषुः स आदिकर्ता नारायणाख्यो विष्णुः भौमस्य ब्रह्मणो ब्राह्मणत्वस्य रक्षणार्थं देवक्यां वसुदेवाद् अंशेन कृष्णः किल सम्बभूव।** अर्थात् दीर्घकाल से धर्मानुष्ठान करनेवालों के अन्त:करण में कामनाओं के उदय होने से विवेक-विज्ञान का ह्रास हो जाता है, ऐसे अधर्म से जब धर्म दबने लगा और अधर्म की वृद्धि होने लगी, जगत की स्थिति का परिपालन करने की इच्छावाले आदिकर्ता नारायण श्रीभगवान विष्णु पृथ्वी के भूदेवों के, ब्राह्मणत्व के रक्षार्थ श्रीवसुदेव-देवकी के यहाँ अपने अंश से श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित हुए।

इस प्रकार भगवान ने विभिन्न युगों में अवतार लेकर अपने अवतार-प्रयोजन को सिद्ध किया और समाज को सत्पथ पर अग्रसर कर सद्धर्म और शान्ति की स्थापना की।

अवतार के प्रसंग में श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य और उनके महान जीवनीकार स्वामी सारदानन्द जी महाराज लिखते हैं – "इन्द्रियातीत विषयों के प्रति इस प्रकार का तीव्र अनुराग उसे (मानव को) कहाँ से प्राप्त हुआ, जब हम इसके मूल कारण के अन्वेषण में प्रवृत्त होते हैं, तब पता चलता है कि दिव्य गुण तथा प्रत्यक्षानुभूतिसम्पन्न पुरुषों का निरन्तर भारत में जन्म लेना ही इसका एक मात्र कारण है।" (लीलाप्रसंग, पृष्ठ ५)

"साधारण मानवों को जो मार्ग सदा अन्धकारपूर्ण प्रतीत होता है, अवतारी पुरुष उस मार्ग में उज्ज्वल प्रकाश को देख निर्भीक हृदय से उस ओर अग्रसर होते हैं एवं अपने उद्देश्य में सफल हो मानवों को उस मार्ग में प्रवृत्त करते हैं। इस प्रकार अवतारी पुरुषों के द्वारा मायातीत ब्रह्मस्वरूप तथा जगत्कारण ईश्वर की उपलब्धि के लिये युग-युग में अदृष्टपूर्व नवीन मार्गों का पुनः पुनः आविष्कार होता रहता है।

"अवतार पुरुषों के गुण, कर्म, स्वभावादि का इस प्रकार निर्णय करके ही पुराणकर्ताओं ने अपनी बात समाप्त नहीं कर दी है, अपितु उनके आविर्भावकाल तक का उन्होंने स्पष्ट निरूपण किया है। वे कहते हैं, जब सनातन सार्वभौमिक धर्म काल के प्रभाव से ग्लानियुक्त होता है, जब मायाजनित अज्ञान के अनिर्वचनीय प्रभाव से मुग्ध होकर मानव इहलोक एवं पार्थिव भोग-सुख की प्राप्ति को ही सब कुछ मानकर जीवन व्यतीत करता रहता है तथा आत्मा, ईश्वर, मुक्ति आदि इन्द्रियातीत नित्य पदार्थों की किसी एक भ्रमान्ध युग के स्वप्न राज्य की कवि कल्पना मानकर छल, बल तथा चतुराई से सब प्रकार की भौतिक सम्पत्ति तथा इन्द्रिय सुख को प्राप्त कर भी अपने वास्तविक अभाव को दूर करने में समर्थ न हो अशान्ति के घोर अन्धकारपूर्ण असीम प्रवाह में निपतित होकर यातनाओं के कारण हाहाकार करता रहता है, उस समय श्रीभगवान अपनी महिमा के द्वारा सनातन धर्म को राहु-ग्रास से मुक्त शशांक की भाँति उज्ज्वल रूप प्रदान करते हैं तथा दुर्बल मानवों के लिये कृपापूर्वक शरीर धारण कर उनका हाथ पकड़कर उन्हें पुनः धर्ममार्ग में प्रतिष्ठित करते हैं।" (लीलाप्रसंग पृ. ७,८)

भगवान श्रीरामकृष्णावतार का प्रयोजन

जब भक्तों ने जन्म-जन्मान्तरों से कठिन भव-बन्धनों में फँसकर, प्रकृति की माया से व्यथित होकर मुक्ति हेतु आर्तनाद किया, जब साधकों ने मुक्ति हेतु अग्रसर हो षड्रिपुओं के घोर प्रहार से गहन आहत होकर उस पीड़ा से मुक्ति हेतु भगवान को व्यथितचित्त से व्याकुलतापूर्वक पुकारा, जब भक्तों ने तन-मन-बुद्धि की दासता से मुक्त हो, वाक्यमनातीत सत्ता की अनुभूति कर अपने मूल सहज सच्चिदानन्दमय स्वरूप में प्रतिष्ठित होने हेतु उनमें आगत संकटों से बचाने हेतु परमात्मा से आर्त वेदना प्रकट की, तब भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंस देव ने अवतरित होकर विभिन्न प्रकार से उन-उन साधकों, भक्तों की सहायता की और सम्पूर्ण जन-मानस के लिये मुक्ति का मार्ग उन्मुक्त किया। वे ऐसे महान अवतार हैं, जिन्होंने भोगवादियों को भोग और भोगवादी संस्कृति की असारता का बोध कराकर उन्हें ईश्वरभक्ति का रसास्वादन कराया। भक्तों, साधकों, तत्त्वजिज्ञासुओं और ईशपथावलम्बियों के लिये सभी धर्मों, सभी मतों, पथों और सम्प्रदायों के लोगों की साधना-यज्ञ में बाधक षड्शत्रुओं के विनाश का मार्ग बताया। उन्होंने स्वयं जीवन में सभी धर्मों, मतों की साधनाओं में सिद्धि प्राप्त कर सभी धर्मावलम्बियों के साधना पथ का प्रदर्शन कर उनकी अभीष्ट प्राप्ति में सहायता की। **(क्रमशः)**

त्याग और पवित्रता के आदर्श : श्रीरामकृष्ण

स्वामी विवेकानन्द

एक (शंकराचार्य) का था अद्भुत मस्तिष्क और दूसरे (चैतन्य) का था विशाल हृदय। अब एक ऐसे अद्भुत पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, जिसमें ऐसा ही हृदय और मस्तिष्क - दोनों एक साथ विराजमान हों, जो एक साथ ही शंकर के प्रतिभा-सम्पन्न मस्तिष्क एवं चैतन्य के अद्भुत, विशाल, अनन्त हृदय का अधिकारी हो, जो देखे कि सब सम्प्रदाय एक ही आत्मा, एक ही ईश्वर की शक्ति से परिचालित हो रहे हैं और प्रत्येक प्राणी में वही ईश्वर विद्यमान है, जिसका हृदय भारत के तथा भारत के बाहर के दीन, दुर्बल, पतित सबके लिए द्रवित हो; लेकिन साथ ही जिसकी विशाल बुद्धि ऐसे महान तत्त्वों की परिकल्पना करे, जिनसे भारत में तथा भारत के बाहर सब विरोधी सम्प्रदायों में समन्वय साधित हो और इस अद्भुत समन्वय द्वारा वह एक हृदय और मस्तिष्क के सार्वभौम धर्म को प्रकट करे।

एक ऐसे ही पुरुष ने जन्म ग्रहण किया और मैंने वर्षों तक उनके चरणों तले बैठकर शिक्षा-लाभ का सौभाग्य प्राप्त किया। समय हो चुका था। एक व्यक्ति के आविर्भाव की आवश्यकता थी और उनका जन्म हुआ। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उनका समग्र जीवन एक ऐसे नगर (कोलकाता) के पास व्यतीत हुआ, जो पाश्चात्य भावों से उन्मत्त हो रहा था, जो भारत के सब शहरों की अपेक्षा विदेशी भावों से अधिक भरा हुआ था। वे वहीं निवास करते थे। परन्तु ये महा-प्रतिभाशाली व्यक्ति हर प्रकार के किताबी ज्ञान से रहित थे... परन्तु हमारे विश्वविद्यालय के बड़े-बड़े विद्वान स्नातकों ने उनको एक महान बौद्धिक प्रतिभा के रूप में स्वीकार किया। वे अद्भुत महापुरुष थे – श्रीरामकृष्ण परमहंस।

मेरे गुरुदेव कोलकाता नगर के समीप रहने आए। यह नगर भारत की राजधानी तथा हमारे देश का सबसे महत्त्वपूर्ण विश्वविद्यालय नगर है, जहाँ से प्रतिवर्ष सैकड़ों नास्तिक तथा भौतिकवादी शिक्षा प्राप्त करते हैं – तो भी विश्वविद्यालय के इन्हीं सन्देहवादी तथा अज्ञेयवादी व्यक्तियों में से अनेक लोग उनके पास आते और उनकी बातें सुनते थे। मैंने भी उस व्यक्ति के बारे में सुना और उनके उपदेश सुनने उनके पास गया। मेरे गुरुदेव एक अत्यन्त साधारण मनुष्य जैसे ही प्रतीत होते थे। उनमें कोई विशेषता नहीं दिखती थी। वे बहुत साधारण भाषा का प्रयोग करते थे। उस समय मेरे मन में यह प्रश्न उठा –''क्या यह व्यक्ति वास्तव में महान ज्ञानी है?' मैं धीरे से खिसककर उनके पास गया और उनके सामने वही प्रश्न रख दिया, जो मैं अन्य सभी से पूछा करता था – ''महाराज, क्या आप ईश्वर में विश्वास करते हैं?'' उन्होंने उत्तर दिया – ''हाँ।'' मैंने कहा – 'क्या आपने ईश्वर को देखा है?'' उन्होंने उत्तर दिया – 'हाँ।'' मैंने कहा – 'कैसे?'' उन्होंने उत्तर दिया – 'यहाँ जैसे मैं तुम्हें देख रहा हूँ, वैसे ही मैं ईश्वर को देखता हूँ – बल्कि उससे भी अधिक स्पष्ट रूप से।'' इस उत्तर का मेरे मन पर तत्काल असर हुआ, क्योंकि जीवन में मुझे पहली बार ऐसे व्यक्ति मिले थे, जिन्होंने तत्काल कह दिया कि उन्होंने ईश्वर को देखा है, जिन्होंने यह भी बताया कि धर्म एक वास्तविक सत्य है और जिस प्रकार हम अपनी इन्द्रियों के द्वारा विश्व का अनुभव करते हैं, उससे कहीं अधिक स्पष्ट रूप से उसका अनुभव किया जा सकता है। मैं दिन-पर-दिन उनके पास जाने लगा और मैंने यह प्रत्यक्ष अनुभव किया कि धर्म भी दूसरे को दिया जा सकता है, केवल एक ही स्पर्श तथा एक ही दृष्टि में सारा जीवन बदला जा सकता है। ... इन महापुरुष का प्रत्यक्ष दर्शन करने के बाद मेरी सारी नास्तिकता दूर हो गयी।

अपने गुरुदेव के सान्निध्य में रहकर मैंने जान लिया कि इस जीवन में ही मनुष्य पूर्णावस्था को पहुँच सकता है। उनके मुख से कभी किसी के लिए अभिशाप या निन्दा के वचन नहीं निकले। उनकी आँखें कोई बुरी चीज देख ही नहीं सकती थीं और न उनके मन में कभी बुरे विचार ही प्रवेश कर सकते थे। उन्हें जो कुछ दिखा, वह अच्छा ही दिखा। यह महान पवित्रता तथा महान त्याग ही आध्यात्मिक जीवन का रहस्य है।

त्याग के बिना महान आध्यात्मिकता कैसे प्राप्त हो सकती है? त्याग ही सभी प्रकार के धर्मभावों की पृष्ठभूमि है और तुम यह सदैव देखोगे कि जैसे-जैसे त्याग का भाव क्षीण होता जाता है, वैसे-वैसे धर्म के क्षेत्र में इन्द्रियों का

(शेष भाग पृष्ठ १२३ पर)

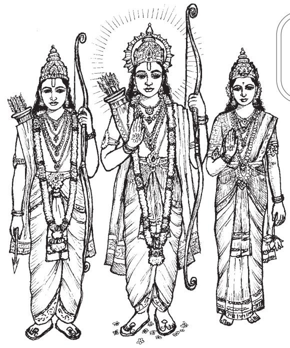

धर्म-जीवन का रहस्य (८/५)

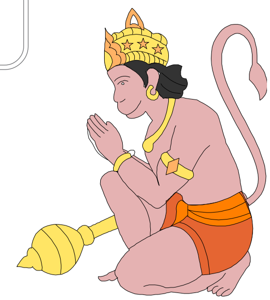

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

मम दरसन फल परम अनूपा ।
जीव पाव निज सहज सरूपा ।। ३/३५/९

बस, यही अनुभूति हो जाना कि यह तो हमारी अपनी ही 'निधि' है। इसके बाद सीताजी ने आँखें मूँद लीं। दोनों तरह से थक गईं। अब थक जाने के बाद तो एक ही उपाय है कि आप आँखें मूँदकर विश्राम करें। इस अर्थ में भी थकने का एक सदुपयोग हुआ। गोस्वामीजी ने दोनों रूप में दिया है। सीताजी के नेत्र थक गये और उन्होंने नेत्र मूँद लिये। नेत्र मूँद लेने का अभिप्राय उस सन्दर्भ में देखें कि पहले तो नेत्र खुले रखने पर ईश्वर बाहर दिखाई पड़ा था। पर नेत्र मूँदने का क्या अर्थ हुआ?

क्या यह उस तरह का नेत्र मूँदना है, जिस तरह से कई श्रोताओं के नेत्र मुँदे हुए दिखाई दे रहे हैं? नहीं, उस नेत्र मूँदने का वह अर्थ नहीं है। यहाँ नेत्र मूँदने का अर्थ हुआ कि जो बाहर दिखाई दे रहा था, वह जब भीतर ही दिखाई देने लगा, तो उसी को नेत्र मूँदकर देखने लगीं। श्री सीताजी नेत्रमार्ग से उसे अपने भीतर ले आयीं। अब वह बाहर ही नहीं, भीतर भी है। भीतर भी देखें और बाहर भी देखें। देखने के बाद उन्होंने और भी एक कार्य किया – उनको हृदय में ले आईं और पलकों के कपाट बन्द कर लिये –

लोचन मग रामहिं उर आनी ।
दीन्हें पलक कपाट सयानी ।। १/२३२/७

वे बड़ी सयानी हैं। साधक सयाना कौन है? वे कोई साधक थोड़े ही है, वे तो महाशक्ति हैं। परन्तु साधकों को उन्होंने यही सिखाया कि सयानापन इसी में है कि खजाना यदि मिल जाय, तो उसे बन्द कर दो। तो सयानी सीताजी ने किवाड़ बन्द कर लिये। – क्यों? बोले – अपनी निधि खो गई हो और यदि मिल जाय, तो पहला काम आप यही करेंगे कि जल्दी से उसे आलमारी में बन्द कर दें, ताकि कहीं फिर न खो जाय। ईश्वर को जब हम एक बार देख लेंगे, पहचान लेंगे, फिर तो हम उसे अपने अन्तर्जीवन में पा लेंगे। इसके बाद अब पलक-कपाट बन्द हैं, बाहर वाले क्या समझ रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, उसकी बात नहीं है। पलकों का किवाड़ बन्द और उस पलकों के बन्द किवाड़ के भीतर जिस दिव्य मिलन की अनुभूति हो रही है, यही वस्तुतः साधना का अन्तिम स्वरूप है, अन्तिम लक्ष्य है। उसे माँ ने इस तरह से प्रगट किया। थकने का भी यह एक क्रम है। भक्ति-साधना में थकिये, पर अन्त में थकने का फल पाकर, उसको हृदय में लाकर, उसके मिलन की अनुभूति का दिव्य आनन्द पाना है।

दूसरे थकने वाले हैं परशुरामजी। इनके भी नेत्र थके। गोस्वामीजी ने लिखा – श्रीराम को वे तब तक देखते रहे, जब तक कि उनके नेत्र थक नहीं गये –

रामहि चितइ रहे थकि लोचन ।। १/२६९/८

परन्तु नेत्रों के थकने के बाद यदि उन्होंने भी वही किया होता, जो श्री सीताजी ने किया, तब तो कहना ही क्या था। परन्तु इस लीला में यह दिखाना ही था कि आप यदि थकने के बाद भी विश्राम की स्थिति में नहीं जायेंगे, अन्तर्जीवन में नहीं जायेंगे, तो क्या होगा? थकने के बाद यदि उन्होंने भी नेत्र मूँदकर सोचा होता कि आज तक मुझमें जो वृत्ति कभी उत्पन्न नहीं हुई, वह कैसे आ गयी ! एक बार तो उन्हें लगा कि आज मेरे हृदय में दया आ गई है; और उनकी मान्यता थी कि दया से बुरी वस्तु कुछ भी नहीं है। आप इसे बुरी बात न मानियेगा। जो लोग चरित्र-निर्माण के बड़े पक्षधर होते हैं, उन लोगों का कहना है कि भक्तों ने ईश्वर की दया का प्रचार कर-करके समाज का ऐसा सत्यानाश कर डाला है कि क्या कहें ! लोग समझते हैं कि पाप करो और भगवान क्षमा कर देते हैं। यह क्या दया है? वह भी अपने आप में एक सिद्धान्त है। ऐसे दया के दुरुपयोग के भी दृष्टान्त मिलते हैं। तो परशुरामजी ने तो अपने जीवन में निश्चय किया था कि अन्याय के लिए तो कठोर ही बनना होगा। वे स्वयं तो निस्पृह थे। कोई कामना नहीं। न कांचन

की कामना, न कामिनी की। ब्रह्मचारी थे, ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रतिष्ठित थे। उन्होंने लोक-कल्याण के लिए परशु उठाया और कठोर दण्ड दिया। अत: वे दया को तो स्वीकार ही नहीं करना चाहते थे। इसीलिए बीच में जब उनके मन में दया-जैसा अनुभव हुआ, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कहने लगे – अरे, आज मुझे यह हो क्या गया? कहीं विधाता ने विपरीत होकर मेरा स्वभाव तो नहीं बदल दिया! अन्यथा मेरे हृदय में किसी भी समय कृपा भला कैसे आ सकती है –

भयेउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ।
मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ ।। १/२८०/२

आज तक तो मैंने कभी किसी पर कृपा नहीं की, आज यह क्या बात है? मेरे हृदय में यह कृपा की वृत्ति क्यों उठ रही है? पर यहाँ पर तो मानो हृदय भी संकेत दे रहा है।

जनक ने भी पहली बार श्रीराम और उनकी सुन्दरता को देखा, तो बस देखते ही रहे। परशुरामजी ने भी देखा, तो देखते रहे। विश्वामित्र ने जब मुस्कुराते हुए जनक की ओर देखा, तो जनक बोले – महाराज, इनका परिचय तो दीजिए, ये कौन हैं? विश्वामित्र ने कहा – तुम तो बड़े ज्ञानी हो। तुम्हीं बता दो कि ये तुम्हें कौन लग रहे हैं? इस पर महाराज जनक ने कैसी बढ़िया बात कही? बोले – जिस ब्रह्म को वेदों ने 'नेति'-'नेति' कहकर समझाने का प्रयास किया है, कहीं वही तो दो वेष बनाकर नहीं आ गया? –

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा।
उभय बेष धरि की सोइ आवा ।। १/२१६/२

विश्वामित्रजी हँसकर बोले – तुमने ब्रह्म को यह उपाधि कैसे दे डाली? उन्होंने उत्तर दिया – आज तक कभी मेरे अन्त:करण में राग का उदय नहीं हुआ और जिसे देखकर राग का उदय हुआ, वह तो ब्रह्म ही हो सकता है –

सहज बिराग रूप मनु मोरा।
थकित होत जिमि चंद चकोरा ।। १/२१६/३

दूसरी ओर परशुरामजी को भी आज वही अनुभूति हुई। उन्होंने सारी क्षत्रिय जाति को दण्ड दे डाला था; और उनके सामने जो ईश्वर खड़ा था, वह उसी क्षत्रिय वर्ण का एक राजकुमार था। परन्तु उनको देखकर वे जिस प्रकार तदाकार हो गये, तन्मय हो गये, आनन्दित हो गये, यदि इस दिशा में उनका ध्यान चला जाता कि 'अरे, यह क्या बात है? क्यों ऐसा हो रहा है?' परन्तु ऐसा नहीं हुआ।

उन्होंने अपनी दृष्टि उठायी और देखा, तो वहाँ धनुष टुकड़ों में बँटा हुआ पड़ा था। अखण्ड को देखा, उस अखण्ड में तो न द्वैत है, न क्रोध है, न दुख है। परन्तु उसके बाद ही उनकी खण्डित धनुष की ओर दृष्टि चली गई। यही सूत्र है। जब हम अखण्ड को छोड़कर खण्ड को ही देखेंगे, तो हमें क्रोध ही तो आयेगा। द्वैत बुद्धि से ही तो क्रोध आता है; और फिर क्रोध का जैसा परिणाम होता है – उन्हें सबसे अधिक क्रोध जनक पर ही आया और उन्होंने तत्काल पूछा – अरे मूर्ख जनक, जरा बता तो, यह धनुष किसने तोड़ा? –

कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा।१/२७०/३

वे सारे राजा, जो अभी तक तो बड़े दुखी थे कि हमसे धनुष नहीं टूटा, पर जब परशुरामजी ने यह पूछा, तो वे यह सोचकर प्रसन्न हो गये कि 'बड़ा अच्छा हुआ जो हमसे नहीं टूटा, यदि टूट गया होता, तब तो हमारा सिर भी कटा होता। अच्छा ही हुआ। सिर कटने से बचा।'

अब जनक क्या उत्तर दें! परशुरामजी कहते हैं – "तू कितना बड़ा मूर्ख है! आज तक विश्व के इतिहास में मैंने तुझ जैसा मूर्ख नहीं देखा! धनुष की परीक्षा चलवाकर ली जाती है या तुड़वाकर? यदि तुझे अपनी कन्या के लिए योग्य वर की अपेक्षा थी, तो उपाय था कि कोई लक्ष्य रख देता कि जो इस लक्ष्य को वेध देगा उसके गले में मेरी कन्या जयमाला डालेगी। पर तू इतना बड़ा मूर्ख है। पहले तो यही भूल गया कि यह धनुष किसका है! इतने वर्षों तक उस धनुष की तूने पूजा की और अब उसे तुड़वा दिया, तो तुझसे बढ़कर कोई मूर्ख है ही नहीं।"

जनक कुछ बोले नहीं, समझ गये कि यह राम-राम के बीच की बात है, हम क्यों बोलें! इसका सांकेतिक तत्त्व यही है कि परशुराम यह मान बैठे थे कि धनुष का उद्देश्य केवल लक्ष्यवेध है, परन्तु यहाँ तो बड़े ही उच्चकोटि के दर्शन की वृत्ति है। जनक बोले नहीं, परन्तु उनके पास इसका उत्तर था। यदि उनसे कोई पूछता कि आपने धनुष तुड़वाया क्यों, चलवाया क्यों नहीं? तो वे कहते कि शंकरजी ने यदि धनुष के साथ बाण भी दिया होता, तो चलवा कर देखता। परन्तु बाण नहीं दिये, केवल धनुष दिया, तो उसको तुड़वाना ही पड़ेगा। उसको चलवाया कैसे जाय?

उसमें दार्शनिक तत्त्व यह है कि लक्ष्यवेध बहुत बड़ी

वस्तु है, परन्तु जो परिपूर्ण है और जिसका कोई लक्ष्य ही शेष नहीं रह गया है, वह ऐसा क्यों करने जायेगा? लक्ष्यभेद करके जो कुछ पाना चाहता है, वह तो जीव है, वह नर है, वह अर्जुन है; वह भले ही लक्ष्यवेध करके द्रौपदी को पाना चाहता है, परन्तु यह पूर्ण ब्रह्म भी क्या लक्ष्यभेद करके सीताजी को पाना चाहेगा। जो उन्हीं की अभिन्न शक्ति है, उसको न उसे पाना है, न उसके लिये कोई लक्ष्य है, इसलिए वह जो एक दार्शनिक संवाद चल रहा था, जो बहिरंग दृष्टि से तो लग रहा है कि बड़ी नासमझी की बात है, परन्तु शंकरजी धनुष के साथ बाण क्यों नहीं देते? उस धनुष से उन्होंने बाण को भी चलाया था। बाण का उद्देश्य पूरा हो गया और उसके बाद धनुष ने शंकरजी से एक प्रश्न किया – महाराज, आपको तो लोग मुक्तिदाता कहते हैं, परन्तु मुझे तो आप बाँधते हैं। जब धनुष को चलाया जाता है, तो उसे डोरी से बाँधकर चलाया जाता है। डोरी से बाँधे बिना उसे चलाया कैसे जायगा? – तो आप मुझे बाँधते हैं।

संस्कृत में 'गुण' शब्द के दो अर्थ हैं – एक तो डोरी को गुण कहते हैं और मनुष्य के जीवन में जो सद्भाव है, उन्हें भी गुण कहते हैं। धनुष पर जो डोरी है, वह गुण है। धनुष ने शंकरजी से कहा – महाराज, सबको तो आप मुक्ति देते हैं, पर मुझे बाँधते हैं; मेरी मुक्ति कैसे होगी? शंकरजी बोले – जब तक रहोगे, तब तक बँधोगे, तब तक तुम गुण के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते।

यही संसार का सत्य है। संसार के सारे जीव गुणों के बन्धन में बँधे हुए हैं। चाहे वह तमोगुण का बन्धन हो, चाहे रजोगुण का। बहुत उठ गये, तो सतोगुण का बन्धन रह जाता है। जब तक अहं (मैं) शेष रहेगा, तब तक जीव गुणों से मुक्त नहीं हो सकता। व्यक्ति जो संसार से बँधा हुआ है और शंकरजी का धनुष भी जो बँधा हुआ है, वह डोरी कौन-सी है। रामायण में भी लिखा हुआ है – माया के बन्धन में जीव बँधा हुआ है –

देखी माया सब बिधि गाढ़ी ।। १/२०१/३

किसी ने कबीरदासजी से पूछा – लोग कहते हैं माया का बन्धन बड़ा कठिन है; यह माया क्या है? उन्होंने एक बहुत बढ़िया बात कहीं। वे बोले – मैं और तूँ की रस्सी या गुण के बन्धन के द्वारा यह संसार बँधा हुआ है –

मैं अरू तू की जेवरी बँधेउ सकल संसार ।।

रामायण में भगवान राम भी यही कहते हैं – सारा बन्धन तो मैं-मेरेपन और तू-तेरेपन का है –

मैं अरु मोर तोर तैं माया ।। ३/१५/२

यह 'मैं' चाहे जितना अच्छा हो, परन्तु यह बन्धन अवश्य है। कबीरदासजी से पूछा गया – आप स्वयं बँधे हुए हैं या नहीं? तो उन्होंने कहा – जिस कबीर का राम जैसा आधार है, वह भला कैसे बँधेगा –

दास कबीरा क्यों बँधै, जाके राम अधार ।।

इस गुण-बन्धन से मुक्त होना जीव के बस की बात नहीं है, उसे तो ईश्वर की कृपा से ही इस गुण-बन्धन से मुक्ति मिलती है। वह धनुष वस्तुत: गुण-बन्धन से मुक्त हो गया था। ईश्वर का स्पर्श प्राप्त करके धन्य हो गया था। गुण से जो मुक्ति थी, यही राम का रामत्व है। शिव के धनुष ने राम के हाथों का स्पर्श प्राप्त किया और वह उनके संस्पर्श के द्वारा उस गुण-बन्धन से मुक्त हो गया।

परशुरामजी ने पूछा – धनुष किसने तोड़ा। उनकी कल्पना थी कि तोड़नेवाला व्यक्ति अकड़कर खड़ा होगा। देखने लगे कि यहाँ सबसे अधिक सीना ताने कौन खड़ा है? तो एक भी दिखाई नहीं पड़ा। "अच्छा, तो वह मेरे डर के मारे काँप रहा होगा।" तो काँपने वाले इतनी बड़ी संख्या में थे कि लगा – "अरे, यहाँ तो सब-के-सब काँप रहे हैं। सामने जो राजकुमार है, वह बड़ा ही सुन्दर और सलोना है। वह बड़े सहज भाव से खड़ा है – न काँप रहा है, न सीना तान रहा है और न उसमें किसी अन्य प्रकार की वृत्ति है, अत: यह तो धनुष तोड़ने वाला व्यक्ति है ही नहीं। इसने तो तोड़ा ही नहीं होगा।" इस प्रकार उन्होंने गणित से उनको तो पहले ही अलग कर दिया। तो फिर तोड़ने वाला कौन है? जनक, अब तुम्हीं बताओ!

जनक बोल नहीं रहे हैं। श्रीराम कह सकते थे – मैंने तोड़ा, परन्तु वे बोले – महाराज, धनुष को तोड़ने वाला आपका कोई दास ही होगा –

नाथ संभुधनु भंजनिहारा ।
होइहि कोउ एक दास तुम्हारा ।। १/२७०/१

इतनी घुमावदार भाषा बोलने की क्या जरूरत थी? सुनकर परशुरामजी भी नहीं समझ सके कि इन्होंने ही तोड़ा है। उनको लगा कि शायद तोड़नेवाले को बचाने के लिए ही यह मुझसे विनम्रता से कह रहा है। वे चिढ़कर बोले – यदि धनुष को तोड़नेवाला अलग नहीं हुआ, तो मैं सबका सिर काट लूँगा। या तो वह स्वयं सामने आ जाय, या कोई दूसरा बता दे कि किसने तोड़ा –

सुनहु राम जेहिं सिवधनु तोरा ।
सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ।।
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा ।
न त मारे जैहहिं सब राजा ।। १/२७१/४-५

प्रभु मुस्कुरा कर चुप रह गये। उन्होंने इतनी घुमावदार भाषा का प्रयोग क्यों किया? भगवान राम यदि कहते कि 'मैंने तोड़ा', तो धनुष 'अहंकार' का ही है। क्या एक 'मैं' दूसरे 'मैं' को तोड़ सकता है? यदि कोई कहे कि मैंने 'मैं' को तोड़ दिया, तो जब 'मैं' बोल ही रहा है, तो 'मैं' टूटा कहाँ? वह तो ज्यों-का-त्यों बचा हुआ है। श्रीराम का तात्पर्य यह था कि 'महाराज, जब तोड़नेवाले ने टूटनेवाले धनुष-रूपी 'मैं' को तोड़ दिया, तब वह तोड़नेवाला 'मैं' रह ही कहाँ गया? एक नई भाषा। परशुरामजी इस भाषा को समझ नहीं सके। तब लक्ष्मणजी ने जो कहा, वह लोगों को बड़ा पसन्द आता है, परन्तु उसका तत्त्व थोड़े ही पसन्द आता है। लोगों को लगता है – वाह, क्या मुँहतोड़ उत्तर दिया।

लक्ष्मणजी के हृदय में ऐसा लगा – अरे, ये तो इतने निकट आकर भी नहीं पहचान रहे हैं, अत: उन्होंने वह सूत्र दिया, जो बड़ा सार्थक था। आगे चलकर यह स्पष्ट हो जाता है। आश्रमों के सन्दर्भ में भगवान राम ब्रह्मचारी नहीं, गृहस्थ हैं। आगे चलकर प्रसंग आता कि परशुरामजी ने जब भगवान राम से कहा – या तो तुम मुझसे लड़ो। – पर महाराज, यदि न लड़ना चाहूँ तो? – तो बस, तुम्हारा यह जो नाम है, इसे छोड़ दो, अब यह 'राम' नाम तुम्हारा नहीं रहेगा। अपने लिये कोई अन्य नाम रख लो –

नाहिं त छाड़ कहाउब रामा ।। १/२८०/२

तो परशुरामजी नहीं चाहते कि कोई दूसरा 'राम' भी रहे। – भला कोई मेरी बराबरी का कैसे हो सकता है? कहाँ ये गृहस्थ और कहाँ मैं ब्रह्मचारी! कहाँ ये राजकुमार, राजसत्ता का स्वामी और कहाँ मैं महान त्यागी, न जाने कितने राज्यों को छोड़ दिया। यह बहुत बड़ा सूत्र था।

'मैं ब्राह्मण' और 'ये क्षत्रिय' – हम सब इसी के तो अभ्यस्त हैं। इस अभिमान का उत्तर वही हो सकता था, जो महाभारत-काल में भीष्म ने परशुरामजी को दिया था। भीष्म उनके शिष्य थे, किन्तु उनका परशुरामजी से युद्ध हो गया। परशुरामजी ने कहा – मेरा इतिहास जानते हो? मैं वही परशुराम हूँ, जिसने सारी पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से विहीन कर दिया था। इस पर भीष्म ने भी गर्व के साथ कहा – तब भीष्म जैसा कोई क्षत्रिय नहीं रहा होगा। यह भीष्म की भाषा थी। मानो उनके सात्त्विक अभिमान का उत्तर अभिमान से ही दिया गया था। परन्तु श्रीराम तो ऐसा उत्तर नहीं दे सकते थे। भगवान राम का तो चरित्र ही स्वयं ऐसा उपदेश देता है, ऐसा परिवर्तन ला देता है। अत: न उन्होंने चुनौती को स्वीकार किया और न लड़े ही। भगवान राम ने तो सारा अर्थ ही बदल दिया। उन्होंने कहा – महाराज, बात यदि केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय की हो, तब तो हमारे-आपके बीच बड़ा अच्छा समझौता है – आपको लोग प्रणाम करते हैं, तो आपको प्रसन्नता होती है और मुझे आशीर्वाद पाकर आनन्द होता है; तो मैं आपको प्रणाम करूँ और आप आशीर्वाद दें। हमारा-आपका कितना अच्छा सम्बन्ध रहेगा –

हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा ।
कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा ।। १/२८२/५

– अच्छा, तो यह नाम का झगड़ा कैसे मिटेगा? तो बोले – महाराज, उसकी भी कोई समस्या नहीं है, क्योंकि कहाँ तो दो अक्षर का 'राम' और कहाँ यह 'परसुराम' –

राम मात्र लघुनाम हमारा ।
परसु सहित बड़ नाम तोहारा ।। १/२८२/६

– तो कैसे पता चलेगा? लड़ाई होगी, तभी तो पता चलेगा, कौन हारा और कौन जीता। श्रीराम बोले – इसका निर्णय अभी हो जाता है। – कैसे? बोले – हम आपसे हर प्रकार से हार स्वीकार करते हैं –

सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे ।। १/२८२/८

तो अभिमान का उत्तर अभिमान नहीं है। संसार में सभी, अभिमान का उत्तर अभिमान से देने के अभ्यस्त हैं। भीष्म जैसे व्यक्ति भी इसी के अभ्यस्त हैं। परन्तु भगवान राम कहते हैं – हम तो आपके सामने हर तरह से हारे हुए हैं। आप ब्राह्मण हैं, उदार हैं, मुझे क्षमा कर दीजिए। भगवान श्रीराम सर्वशक्तिमान हैं, परन्तु वे मानो संकेत मात्र देना चाहते थे, परन्तु लक्ष्मणजी वही बात थोड़ी कड़वी भाषा में कह देते हैं। जब परशुरामजी ने पूछा – किसने तोड़ा? और जब वे श्रीराम की बात नहीं समझ पाए, तो लक्ष्मण बोल पड़े – महाराज, लड़कपन में तो हम लोग बहुत-से धनुष तोड़ा करते थे, पर आप कभी नाराज होकर आते नहीं दिखे, आज बात क्या है? इस धनुष के प्रति आपकी विशेष ममता क्यों है –

बहु धनुहीं तोरी लरिकाईं ।

कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं ।।
एहि धनु पर ममता केहि हेतू ।। १/२७०/७-८

एक ही वाक्य में इतना कुछ कह दिया गया कि इसमें सारा तत्त्व आ गया। उनका अभिप्राय था – ''महाराज, आपको धनुष टूटने का दुख नहीं है। यदि धनुष टूटने से दुख होता, तब तो जब हम लोग बचपन में धनुष तोड़ा करते थे, तब भी आप आते। व्यक्ति के मन में दुःख तो केवल ममता के कारण ही होता है और यह ममता ही आपको दुख दे रही है।'' इसमें व्यंग्य क्या है? बोले – ''आपने कामिनी से ममता छोड़ी, कांचन से ममता छोड़ी, अब आपको ममता जोड़ने के लिए क्या यह धनुष ही रह गया था?'' ऐसा भी होता है। कई लोग बड़ी-बड़ी वस्तुओं का त्याग करके आ जाते हैं, परन्तु छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए लड़ जाते हैं। कई स्थानों पर यह दृश्य मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है। बहुत बड़ी वस्तुएँ छोड़ दीं, परन्तु कमण्डलु के लिए झगड़ा हो गया। मैं वृन्दावन के आश्रम में रहता था। एक बार तो वहाँ कम्बल के लिए झगड़ा हो गया था। किसी ने त्याग कर दिया हो, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि उसने समग्र रूप से त्याग कर दिया हो। लक्ष्मणजी का व्यंग्य यह था – महाराज, इतना कुछ छोड़ने के बाद बस, इस धनुष पर इतनी ममता? और वह भी टूटे हुए धनुष पर? आप तो जानते ही हैं, जो टूटने वाली वस्तु है, वह तो टूटेगी ही; जो मिटने वाली वस्तु है, वह तो मिटेगी ही। परन्तु देखिए ! आपने सबसे ममता हटा करके इस नश्वर वस्तु से ममता जोड़ ली? उनका यह भी संकेत था कि जिन शंकरजी के नाम पर आप झगड़ा करने आए हैं कि यह मेरे गुरुजी का धनुष है, उन्हें यदि धनुष से ममता होती, तो वे इसे जनकजी को क्यों दे देते? इसका अर्थ यह है कि शंकरजी भी जानते थे कि अब इससे ममता छोड़ो। फिर यदि जनक यह सोचते होते कि धनुष तोड़ना बुरा है, तो तोड़ने के लिए क्यों कहते ! परन्तु उन्हें तो ममता का त्याग करना था। उन्हें अपनी पुत्री को अर्पित करना था, ममता का त्याग करना था। कितने दुर्भाग्य की बात है कि सबने जिस धनुष से ममता छोड़ी, आपने उसी के साथ ममता जोड़ ली ! जिससे ममता जोड़नी चाहिए, वह तो सामने खड़ा हुआ है, आप उन्हें पहचानिये। जो खण्ड है, जो नाशवान है, जो अनित्य है, उससे ममता मत जोड़िए। इस प्रकार कोई वर्णाभिमान या आश्रमाभिमान व्यक्ति का कल्याण नहीं कर सकता। **(क्रमशः)**

भूखा है भगवान मेरा

निर्मला देशपांडे

पूना के निकट, पुरंदर तहसील के पहाड़ी प्रदेश में शान्ति सेना विद्यालय की बहनें ग्रामदान का संदेश लेकर घूम रही थीं। वनिता गावडे की टोली एक गाँव में पहुँचकर घर-घर संपर्क कर आम सभा की। सभा में देर तक चर्चा चलती रही, लेकिन किसी को भोजन का ध्यान नहीं आया। बहनें भी संकोचवश चुपचाप पानी पीकर सो गयीं। दूसरे दिन पुनः पदयात्रा आरम्भ हुई। दूसरे दिन गाँव में पड़ाव डालने को सोचा, लेकिन पता चला गाँव के अधिकांश लोग कहीं बारात में चले गये हैं। तब हम तीसरे गाँव में पहुँचे। दोपहर के दो बज चुके थे। हम मुखिया के घर पहुँचे, तो मुखियाजी नहीं थे। थके हुए शरीर को आराम देना जरूरी था। झोले पटक कर वहीं बैठ गयीं। एक ने अन्दर झाँका, चूल्हा ठंडा था, रसोईघर लिपा हुआ था। लेकिन आहट सुनकर घर की बुढ़िया माँ भीतर से बोली, ''बहू, देखो तो कौन आया है?''

''माताजी! हम मुखियाजी से मिलने आयी थीं।'' वनिता ने थकी हुई आवाज में कहा। बुढ़िया-माँ अन्धी थीं, वे दीवाल के सहारे चलती हुई बाहर आयीं और पूछा, ''खाना कब खाया था बेटी?'' किसी ने झट् से कह दिया, ''दो दिन से कुछ नहीं खाया।'' आह भरती हुई माँ बोल उठी, ''हाय ! मेरे भगवान भूखे मेरे द्वार पर आये हैं !''

बुढ़िया के शब्द दिल को छू गये। वनिता ने कहा, ''कोई बात नहीं माताजी, हम शाम को खा लेंगे।'' बुढ़िया ने तुरन्त कहा, ''यह कैसे हो सकता है? बहू, उठो, चूल्हा जलाओ, जल्दी खाना बनाओ। हाँ, और तब तक जरा चने भून कर लाओ, भूखा है भगवान मेरा !''

'कहाँ से आयी हो बेटा?''

चने फाँकती हुई वनिता बोली, ''सासवड से।''

सासवड में संत ज्ञानेश्वर के छोटे भाई सोपान देव की समाधि है, जिसे गाँव के लोग 'सोपान काका का मंदिर' कहते हैं।

''सासवड से आयी हो, फिर तो हमारे सोपान-काका ने ही भेजा है तुम्हें ! बहू, जल्दी रोटी बनाओ।''

सोपान काका के भेजे हुए अतिथिदेव को खिलाते समय उस अन्धी बुढ़िया-माँ का चेहरा चमक उठा था ! ○○○

('मैत्री' से साभार)

सारगाछी की स्मृतियाँ (४१)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

सारा देश 'भाग्य-भाग्य' करके पतित हो गया। क्योंकि विधाता ने मानो षष्ठी (जन्म) के दिन ललाट पर, भाग्य में लिख दिया और उसको बदल पाने की क्षमता किसी में नहीं है, इसलिए सब कुछ सिर झुकाकर सहते जाओ। कितनी भयंकर बात है ! सबको सूली पर चढ़ा देना ठीक है। **पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः** – यह सब वेद से निकला हुआ चिन्तन है। गीता कहती है –

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।

इतने दिनों तक कुछ लोगों ने अंग्रजों की चापलूसी करके सारे भारतवर्ष की उपेक्षा की है। अब उसी तरह सब जगह उन्हें निकाला जा रहा है। पहले बीस वर्षों तक military discipline (सैन्य अनुशासन) के अन्तर्गत ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करना होगा, तभी तो संन्यास होगा। २० वर्षों में एक दिन भी शान्त मन से अपने भीतर का हाल नहीं जाना, ऐसा व्यक्ति कैसे मुमुक्ष होगा? जो २० वर्ष जीवन का सर्वोत्तम महत्त्वपूर्ण समय है, वह समय रट-रट कर और परीक्षा दे-देकर मस्तिष्क को खराब कर दिया। उसके बाद उसे और कुछ चिन्तन करने में अच्छा लगता है? किसी चीज को आरम्भ से लेकर अन्त तक सुनने और उसके बाद उसे समझने और अन्ततः उसकी धारणा करने का धैर्य तो चाहिए। धैर्य रखने के समान मानसिक क्षमता नहीं है। इसीलिए तो स्वामीजी सब देख-सुनकर कर्मयोग की व्यवस्था कर गए हैं। 'न कर्मणाम् …।' पहले काम करते-करते संसार की ज्वाला में जलने-भुनने के बाद ही तो वैराग्य होगा। वैराग्य होने पर संसार से चले जाने की व्याकुलता होगी।

समष्टि मन के निकट प्रार्थना करना – समष्टि मन ही भगवान हैं। वही उपासना हुई। उपासना द्वारा मन को शुद्ध करके ब्रह्म को ग्रहण करना होगा। तब उस सूक्ष्म मन को लेकर योगाभ्यास सम्भव होगा तथा धीरे-धीरे ईश्वर-तत्त्व अभिव्यक्त होगा। गीता के नौवें अध्याय में सटीक निर्देश देते हुए भगवान कहते हैं – ईश्वर-तत्त्व क्या है, सृष्टि-तत्त्व क्या है, सृष्टि के साथ ईश्वर का सम्बन्ध क्या है, ईश्वर कितने उत्तरदायी हैं, ये सब कुछ बताते हैं। सृष्टि के कार्यों में भगवान ने कितने ही नियम बनाकर रखे हैं, उससे ही यह सृष्टि-चक्र चलता है।

ज्ञान-विचार और योग, दोनों ही एक साथ चलेंगे। ऐसा नहीं होने से ज्ञानी शुष्क विचारवाला हो जायेगा। दक्षिणेश्वर का एक साधु एक महिला के साथ पतित हो गया। ठाकुर बोले – "तुम्हारे ऐसे वेदान्त-ज्ञान से मैं घृणा करता हूँ !" इसके अतिरिक्त शुष्क ज्ञान-विचार करने से व्यक्ति दम्भी हो जाता है, इससे तो उपासना या योग नहीं हो सकता। किन्तु जो साधारण व्यक्ति हैं, जो विचार करके नहीं चल सकते हैं, उन्हें अन्य लोगों की बातों के अनुसार ही चलना उचित है। 'श्रुत्वा अन्येभ्यः उपासते।'

प्रश्न - 'सर्वकर्मणामनारम्भः' का क्या अर्थ है ?

महाराज – अपनी ओर से कोई पहल नहीं करना। जैसे – कुली-मजदूर। उसे जितना करने को कहेंगे, केवल उतना ही करेगा। यह गूँथ दो, तो उसे गूँथ देगा। यदि फिर बोलो, इसे तोड़कर फेंक दो, तो वह तोड़कर फेंक देगा। जैसे सत्यमकाम को (उपनिषद में ऋषि ने) आदेश दिया – जाओ, गायों को चराओ।

जिनके मन में अच्छे-बुरे का बोध नहीं जाग्रत होता, जो अच्छा स्वाद, खराब स्वाद, सुन्दर मुख, कुरूप मुख, फूल, फल कुछ भी नहीं पहचानता, उनकी ज्ञान-विचार के द्वारा क्षति होती है। महापुरुष महाराज तो केवल झोल (एक रसदार सब्जी) खाते थे, किन्तु उन्हें ठाकुर का सब प्रसाद दिया जाता था। वे अंगुली से स्पर्श कर ही कह देते थे, इसमें पंचफोरन अधिक है, इसमें नमक कम है, यह थोड़ा कम पका है। अर्थात् 'सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते।' जिनका सम्यक् परिष्करण नहीं हुआ है, उन्हें दूसरों के

निर्देशों के अनुसार चलना ही अच्छा है। किसके निर्देशों के अनुसार चलना होगा, वह देखना होगा। हममें से अधिकांश लोग बिल्कुल अज्ञानी हैं, कुछ भी नहीं समझते कि किसकी कैसे उन्नति होती है, कैसे उपकार होता है। हम जो देह-मन बुद्धि से परे होने की चर्चा करते हैं, उसका कारण यह है कि हम उस विचार के चिन्तन करने की हमेशा चेष्टा करते हैं। चिन्तन करते-करते ही तो वह विचार मन में स्थान बना पायेगा, इस विचार पर मनन करने की इच्छा होगी।

एक व्यक्ति आकर उड़ीसा की बाढ़, असम के दंगों आदि के सम्बन्ध में उत्तेजित होकर बोलने लगे। यह सब सुनकर किसी ने कहा – इससे ठाकुर के ऊपर क्रोध आता है।''

दूसरा व्यक्ति – क्यों, ठाकुर ने क्या किया है, वह तो ज्ञात नहीं है।

तीसरा व्यक्ति – इन लोगों का कुछ कर्मफल है।

चौथा व्यक्ति – कोई भी कष्ट नहीं पा रहा है। सभी तो ब्रह्म हैं। उन्होंने स्वयं ही कष्ट भोगने की इच्छा की है।

महाराज – और एक आश्चर्य की बात नहीं देख पा रहे हो – जो लोग उन लोगों के दुख-कष्ट से दुखी हो रहे हैं, अपनी सुख-सुविधा में कटौती करके आर्थिक मदद कर रहे हैं, उससे त्याग, सहानुभूति आदि भावों की अभिव्यक्ति हो रही है?

साधु लोग ऋषिकेश में तपस्या करने जाते हैं, किन्तु यदि विवेक-वैराग्य और सूक्ष्म दृष्टि न रहे, तो बड़ी खराब बात होती है। एक साधु उत्तरकाशी गया, खूब पाठ किया, अच्छा विद्वान हो गया, किन्तु भीतर प्रवेश करने हेतु जिस दृष्टि की आवश्यकता होती है, वह नहीं हुआ। कुछ दिनों बाद सुनाई पड़ा कि हिमालय में लकड़ी का व्यापार करता है। बाद में मैंने सुना कि वहाँ की किसी कमेटी (समिति) का सम्मानित सदस्य हो गया है। उसे बहुत समझा-बुझाकर मठ में भेजा गया, किन्तु वह वहाँ नहीं रह सका। पुन: उत्तरकाशी गया। अन्त में (मठ से) नाम काट दिया गया।

'वैराग्यशतकम्' के एक श्लोक में कहा गया है कि हिमालयवासी होकर फल-मूल खाकर जीवन-धारण करो, किन्तु गृहस्थ का अन्न खाकर उस परिवेश में मत रहो। यह बात सुनकर मुझे कैसा तो लगा। असली बात तो मन को लेकर है, मुक्ति का पथ एक ही है। यह भी मन के भीतर ही है। ऋषिकेश आदि स्थानों में ही कुपथ पर चले जाने की सम्भावना अधिक है। परिचित स्थानों में सावधान रहना पड़ता है, वहाँ तो जो इच्छा वही कर सकते हैं।

३०-८-१९६०

प्रश्न – सभी जीवों की गति तो उनके पूर्व-कर्मों के फल के कारण है। वह कर्म कब से आरम्भ हुआ?

महाराज – यह कहा नहीं जा सकता। कैसे सृष्टि हुई, यह समझा नहीं जा सकता, यही माया है। शीशी में इतने दिनों तक जल था, कई दिनों बाद आज देख रहे हो कि उसमें काई जम गई है। जल के भीतर किस प्रकार (काई का) बीज था, कैसे, किसके साथ मिलकर, कैसे वह काई पैदा हो गई, उसे कोई कह नहीं सकता, यही माया है। चूने के साथ कत्था मिलाने से लाल हो जाता है, यही माया है।

ब्रह्म अनेक हो गए। उनका यह अनेक होना अनादि काल से आरम्भ हुआ है और हो रहा है तथा होगा। इसके फलस्वरूप जिसका जितना अभ्युदय हुआ है, वह उतना ही अग्रसर हुआ है। किन्तु ज्ञानी की दृष्टि में इन सबकी सृष्टि ही नहीं हुई। स्वप्न में जो वटवृक्ष देखता हूँ, क्या वह उत्पन्न हुआ है? उसी तरह ज्ञानी देखते हैं – केवल एक ब्रह्म। इसके विभिन्न स्तर हैं – पहले वे देखते हैं कि काई आदि सभी चीजें चिन्मय हैं। उसके बाद ज्ञानी देखते हैं – काई-फाई कुछ भी नहीं है, सभी चिन्मय है।

गीता के नवम् अध्याय में यही सब तत्त्व है और छठवें अध्याय और राजयोग में उसके व्यावाहारिक उपयोग की प्रणाली है। किन्तु इसके अतिरिक्त एक और प्रणाली है – लीला-चिन्तन, ईश्वर को हरेक कोने से देखना होगा। इस प्रकार देखने से ही पता चलेगा कि वे ही सगुण हैं, वे ही निर्गुण हैं, ब्रह्म, जीव, जगत् सब कुछ वे ही हैं। **(क्रमश:)**

वीरता से आगे बढ़ो। एकदिन या एक वर्ष में सफलता की आशा न रखो। उच्चतम आदर्श को पकड़े रहो। दृढ़ रहो। स्वार्थपरता और ईर्ष्या से दूर रहो। आज्ञापालन करो। सत्य, मानवता और अपने देश के कार्य में सदा के लिए अटल रहो और तुम संसार को हिला दोगे। याद रहे – व्यक्ति और उसका जीवन ही शक्ति का उद्गम है, अन्य कुछ भी नहीं।

– स्वामी विवेकानन्द

स्वामी ब्रह्मानन्द के संस्मरण

स्वामी अम्बिकानन्द

('राखाल महाराज', 'राजा महाराज' या केवल 'महाराज' के नाम से भी परिचित भगवान श्रीरामकृष्ण के एक प्रधान शिष्य तथा रामकृष्ण मठ-मिशन के प्रथम संघाध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्दजी आध्यात्मिक भावों के एक अपूर्व ज्योतिपुंज थे। उनके ये संस्मरण बँगला मासिक उद्‌बोधन के वर्ष ९१ के अंक ६ में और तदुपरान्त 'स्वामी ब्रह्मानन्देर स्मृतिकथा' नामक ग्रन्थ में प्रकाशित हुए थे। वहीं से स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने उसका विवेक-ज्योति के लिए हिन्दी अनुवाद किया है। अनुवाद में यत्र-तत्र अंग्रेजी ग्रन्थ 'Swami Brahmananda as We Saw Him' से भी सहायता ली गयी है। – सं.)

मेरे माता-पिता दोनों ही श्रीरामकृष्ण के भक्त थे। वे लोग प्राय: ही दक्षिणेश्वर जाया करते थे। गर्भावस्था के समय माँ ने संकल्प किया था कि पहली सन्तान पुत्र होने पर वे उसे श्रीरामकृष्ण की सेवा में समर्पित कर देंगी। भगवत्कृपा से मैं ही उनकी पहली सन्तान के रूप में जन्मा। जब मैं मात्र कुछ सप्ताह का ही रहा होऊँगा, मेरी माँ के मन में अपने संकल्प को कार्य रूप में परिणत करने की इच्छा हुई। एक दिन वे मुझे एक चादर में लपेटकर दक्षिणेश्वर ले गयीं। साथ में पिताजी भी थे। जब वे दोनों दक्षिणेश्वर पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में एकाकी भावावस्था में खड़े हैं। उन्होंने मेरे माता-पिता को देखते ही मेरी माँ को सम्बोधित करते हुए कहा, "अजी, तुम मेरे लिये क्या लाई हो?" इस पर माँ ने मुझे श्रीरामकृष्ण के चरणों में रखते हुए कहा, "आपको अर्पित करने के लिये मैं यही वस्तु लायी हूँ।" श्रीरामकृष्ण थोड़ी देर मेरी तरफ देखते रहे और उसके बाद बोले, "वाह, शिशु बड़ा ही सुन्दर है ! तो इसे तुम मुझे दे रही हो? बहुत अच्छा !" उन्होंने मुझे अपनी गोद में उठा लिया और अपना दाहिना हाथ मेरे सिर पर रखकर आशीर्वाद दिया। इसके बाद उन्होंने मुझे माँ की गोद में लौटाते हुए कहा, "बच्चे को खूब सावधानी से रखना। यह अब मेरा हो चुका। समय आने पर मैं इसे वापस ले लूँगा।" अनेक वर्षों बाद जब मैं रामकृष्ण संघ में सम्मिलित हुआ, तो इस पर मेरी माँ ही सर्वाधिक हर्षित हुई थीं। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ था कि श्रीरामकृष्ण ने ही मुझे ग्रहण किया है। वैसे श्रीरामकृष्ण तब इस मर्त्यलोक में नहीं थे।

बचपन में मैं अपने माता-पिता के साथ आलमबाजार के मठ में जाया करता था। तब तक बेलूड़ मठ नहीं बना था। उन दिनों वहाँ स्वामी ब्रह्मानन्द, रामकृष्णानन्द, शिवानन्द, तुरीयानन्द और अद्वैतानन्द निवास किया करते थे। कभी-कभी मैं कई दिनों के लिये मठ में ही ठहर जाता। महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्दजी) खूब गम्भीर तथा कड़े स्वभाव के प्रतीत होते, अत: मैं बड़ी सावधानीपूर्वक उनसे दूर ही रहने का प्रयास करता था। स्वामी तुरीयानन्द मुझसे बड़ा स्नेह करते थे और मैं उनके साथ काफी सहज अनुभव करता। स्वामी तुरीयानन्दजी जिस कमरे में रहते थे, अपने मठ के निवास के दिनों में मैं भी उसी में सोया करता था। वे ध्यान करने के लिये आधी रात के समय उठ जाते और मुझे भी जगा देते।

स्वामी विवेकानन्द के देहत्याग के बाद महाराज तथा तुरीयानन्दजी वृन्दावन गये और वहीं तपस्या करने लगे। थोड़े दिनों बाद मैं भी अपने पिताजी के साथ वहाँ गया। मेरे पिता जब भी महाराज लोगों से मिलने जाते, तो मैं भी उनके साथ हो लेता। तुरीयानन्दजी के साथ मेरी विशेष घनिष्ठता होने के कारण मेरा अधिकांश समय उन्हीं के सान्निध्य में बीतता। महाराज उन्हीं के बगल के एक कमरे में निवास करते थे। मैं तुरीयानन्दजी के कमरे में जाकर उन्हें साष्टांग प्रणाम करता। इसके बाद मैं धीरे से महाराज के कमरे का द्वार खोलकर वहीं से उन्हें प्रणाम करता। उनके सामने जाने में मुझे भय तथा संकोच लगता, इसीलिये मैं उनके कमरे के अन्दर जाकर उन्हें साष्टांग प्रणाम करके उनके चरण स्पर्श करने का साहस नहीं जुटा पाता। मेरा ऐसा आचरण देखकर एक दिन तुरीयानन्दजी बोले, "यह क्या? भीतर जा, महाराज को साष्टांग प्रणाम कर और उनके चरण छूकर आशीर्वाद के लिये प्रार्थना कर।" मैं कम्पित हृदय के साथ कमरे में प्रविष्ट हुआ और उनके निर्देशानुसार प्रणाम तथा प्रार्थना करके चुपचाप महाराज के पास खड़ा हो गया। उन्होंने कृपादृष्टि से मेरी ओर देखा और स्नेहपूर्वक कहा, "बेटा, जरा मेरे पाँव दबा दे तो।" इतना कहकर वे लेट गये। मैं बड़े संकोच के साथ उनके पाँव दबाने लगा। वे तुरन्त समझ गये और बोले, "घबराने की कोई बात नहीं है, बेटा।" इतना कहकर उन्होंने मेरी पीठ पर अपना हाथ रखा और इसके साथ ही मुझमें एक विराट परिवर्तन आ गया। मैं मानो अपने शरीर की सारी शक्ति खो बैठा और असहाय-सा उनके चरणों में पड़ गया। थोड़ी देर बाद महाराज विनोदपूर्वक बोले, "अरे, तुमने तो मेरे पाँव दबाना छोड़कर उनका तकिया ही बना लिया है !" मेरे मन-प्राण एक तरह के अकथनीय

आनन्द से परिपूर्ण हो उठे। मैं उठकर बैठ गया और बोला, "आपने मुझ पर कोई जादू किया है।" इसके बाद अपने भीतर के आनन्द को सँभाल पाने में असमर्थ होकर मैं हँसने लगा। मेरा सारा भय दूर हो चुका था; और मुझे पहली बार महाराज के व्यक्तित्व से नि:सृत हो रहे भगवत्प्रेम का आस्वादन मिला।

उसी दिन से मैं महाराज के प्रति तीव्र आकर्षण का अनुभव करने लगा। उनसे दूर रहने की इच्छा ही नहीं होती। जब पिताजी के साथ डेरे पर लौटता, तो यही चिन्ता लगी रहती कि कब दुबारा उन्हें देखूँगा। मेरा व्यवहार पलट चुका था। अब से मैं मठ जाने पर तुरीयानन्दजी को प्रणाम मात्र करके ही तत्काल महाराज के पास जाकर जब तक सम्भव हो, बैठा रहता। मेरा यह आचरण देखकर एक दिन महाराज ने उपहासपूर्वक तुरीयानन्दजी से कहा था, "भाई, लगता है कि तुम्हारा लड़का अब मेरा हो चुका है।" यह सुनकर वे भी हँसते हुए बोले, "यही तो मैं चाह रहा था।"

वृन्दावन में एक दिन मैं महाराज के साथ राधारमण के मन्दिर में गया। वहाँ के प्रार्थना-गृह में प्रतिदिन बड़े-बड़े गायक एकत्र होते हैं और भजन-कीर्तन के द्वारा भगवान की पूजा-उपासना करते हैं। महाराज ने संगीतज्ञों के साथ मेरा परिचय कराते हुए कहा, "यह लड़का भगवान के भजन गाना पसन्द करता है।" सुनकर वे लोग बड़े प्रसन्न हुए। उन लोगों ने मुझे गाने को कहा और तबले, खंजनी आदि के साथ संगत करने लगे। सभी को मेरे भजन अच्छे लगे और मन्दिर के एक पुरोहित महाराज के लिये टोकरी भर मिठाइयाँ ले आये और बोले, "मैं यह टोकरी आपकी कुटिया में भिजवा दूँगा।" महाराज ने प्रसन्नतापूर्वक मेरी ओर देखा और बोल उठे, "तेरे गाने के कारण मुझे कितने अच्छे उपहार मिल रहे हैं!"

स्वामी प्रेमानन्दजी के हार्दिक अनुरोध पर महाराज वहाँ से बेलूड़ मठ के लिये रवाना हुए। पिताजी और मैंने भी उनके साथ यात्रा की। रास्ते में महाराज एक दिन के लिये इलाहाबाद में ठहरकर (अपने गुरुभाई) स्वामी विज्ञानानन्दजी से मिलना चाहते थे। परन्तु इलाहाबाद पहुँचते ही महाराज ने विन्ध्याचल जाकर जगदम्बा का दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की। विन्ध्याचल के निवासी एक भक्त योगीन्द्र सेन को पत्र लिखकर पूछा गया कि क्या वे वहाँ पर हमारे तीन दिन ठहरने की व्यवस्था कर सकेंगे। उत्तर में योगीन्द्र सेन ने हम लोगों से अपना ही आतिथ्य स्वीकार करने का अनुरोध किया। एक दिन सुबह हम लोग उनके घर जा पहुँचे। महाराज उन दिनों तपस्या के भाव में रहते थे, अत: वे हमारे साथ भोजन नहीं करते थे। सारे दिन में वे केवल एक बार दूध-भात ही खाते थे।

पहली रात महाराज, मेरे पिता, हमारे अतिथि और मैं – हम सभी एक ही कमरे में सोये। करीब आधी रात के समय एक मृदु स्पर्श से मेरी नींद टूट गयी। मैंने देखा कि महाराज अपने कपड़े पहनकर एक मोटा कम्बल ओढ़े मेरे सामने खड़े हैं। वे बोले, "उठकर गरम कपड़े पहन ले। तुझे भी मेरे साथ चलना होगा।" मैंने बेहिचक उनके निर्देश का पालन किया। हमें कहाँ जाना है, यह बात पूछने की बात ही मेरे मन में नहीं आयी। महाराज ने एक हाथ में लालटेन और दूसरे हाथ में छड़ी ली और मुझे अपने पीछे-पीछे आने को कहा। हम बाहर निकले। अमावस्या की रात थी और चारों ओर घोर अँधेरा फैला हुआ था। रास्ता भी ऊबड़-खाबड़ था। मुझे लड़खड़ाते देख महाराज ने लालटेन मेरे हाथ में दे दी और मुझे पकड़कर चलने लगे। तब मैंने उनसे पूछा, "हम कहाँ जा रहे हैं?" वे बोले, "देवी-माँ का दर्शन करने।"

जब हम मन्दिर के परिसर में प्रविष्ट हुए, तो देखा कि वहाँ पहले से ही बहुत से दर्शनार्थी एकत्र हैं। उनमें से कुछ लोग माला जप कर रहे थे, तो कुछ लोग जगदम्बा की स्तुति गा रहे थे। वहाँ एक सघन आध्यात्मिक परिवेश फैला हुआ था। मन्दिर के द्वार तब भी बन्द थे। पुजारी लोग विशेष उत्सव के उपलक्ष्य में देवी-माँ की मूर्ति को सजाने में लगे थे। मन्दिर के द्वार खुलने पर दर्शनार्थी लोग खड़े हो गये और माँ का दर्शन करने हेतु धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। इसी बीच पुजारियों ने महाराज को देख लिया। उनके सौम्य मुख-मण्डल तथा व्यक्तित्व से आकृष्ट होकर उन लोगों ने अन्य यात्रियों के लिये रास्ता बन्द करके सर्वप्रथम महाराज को ही मन्दिर में प्रवेश कराया। वे तब भी मेरा हाथ पकड़े हुए थे। महाराज देवी की मूर्ति के सामने जाकर विस्मयपूर्वक बोले, "अहा, कितनी सुन्दर! कितनी सुन्दर!" अगले ही क्षण वे भाव-समाधि में डूब चुके थे।

मन्दिर में पूर्ण निस्तब्धता व्याप्त थी। महाराज की इस भगवद्-भाव में तल्लीनता को पुजारी तथा यात्रीगण बड़े विस्मय के साथ देख रहे थे। थोड़ी देर भावस्थ रहने के बाद महाराज ने मुझे 'माँ' का एक भजन गाने को कहा। भजन सुनते हुए उनके दोनों नेत्रों के कोनों से आनन्दाश्रु गिरने

लगे। वह एक अभूतपूर्व स्वर्गीय दृश्य था। महाराज ने मुझसे एक भजन और गाने को कहा। इसके बाद हम लोगों ने देवी को साष्टांग प्रणाम किया और बाहर निकल आये। महाराज मन्दिर के चबूतरे के एक कोने में जप करने बैठे और मुझे भी बैठने को कहा। मैंने पूछा, ''बैठकर क्या करूँ?'' महाराज ने उत्तर दिया, ''जगदम्बा की उपस्थिति का चिन्तन करो। बाकी निर्देश मैं तुम्हें बाद में दूँगा।'' हम लोग थोड़ी देर वहाँ ठहरे और सूर्योदय होने के पहले ही योगीन्द्र सेन के घर लौट आये।

विन्ध्याचल के पास एक पहाड़ी के नीचे एक गुफा-मन्दिर है। एक दिन हम कुछ भक्तों के साथ उसी मन्दिर के पास वनभोज के लिये गये थे। कुछ भक्त सब्जियाँ काटने और कुछ रसोई बनाने में व्यस्त हो गये। महाराज ने मुझे अपने साथ चलने का निर्देश दिया। हम लोग पहाड़ी पर चढ़ते हुए गुफा-मन्दिर के द्वार तक जा पहुँचे। अन्दर घोर अन्धकार फैला था। हम लोग गुफा में घुसकर धीरे-धीरे विग्रह के पास जा पहुँचे। चारों ओर खूब निर्जनता और शान्ति फैली थी। यहाँ तक कि किसी पक्षी तक की आवाज नहीं आ रही थी। महाराज देवी की मूर्ति के पास बैठ गये और मैं भी उनके पास जा बैठा। थोड़ी देर बाद उन्होंने मुझसे माँ के भजन गाने को कहा। भजन सुनते-सुनते महाराज उस दिन के समान ही भावसमाधि में डूब गये। पहले उनके पूरे शरीर में थोड़ा कम्पन हुआ, इसके बाद उनके रोंगटे खड़े हो गये। फिर उनके दोनों नेत्रों से आनन्दाश्रु झरने लगे। तदुपरान्त वे पूर्णत: स्थिर हो गये। उनकी बाह्य चेतना लुप्त हो चुकी थी। मुझे उनका यह भाव देखकर कोई चिन्ता नहीं हुई, क्योंकि मैंने सुन रखा था कि श्रीरामकृष्ण को भी इसी प्रकार समाधि हुआ करती थी। परन्तु गुफा में मुझे बड़े एकाकीपन का बोध हो रहा था। थोड़ी देर के बाद धीरे-धीरे महाराज की सहज-स्वाभाविक अवस्था लौट आयी। हम गुफा के बाहर निकल आये। मैंने सोचा कि अब हम अपने वनभोज के स्थान पर लौटेंगे, परन्तु पहाड़ी के और भी ऊपर चढ़ने लगे। मैंने उनका अनुसरण किया। पहाड़ी की चोटी पर पहुँचकर महाराज एक चट्टान पर योगासन की मुद्रा में बैठ गये। मुझसे भी उन्होंने वैसे ही बैठने को कहा। वहाँ आसन में बैठा हुआ मैं सोच रहा था, ''महाराज ने मुझे यहाँ बैठने का आदेश तो दिया है, परन्तु मुझे क्या करना होगा, इस विषय में तो अभी तक कुछ बताया ही नहीं है।'' मैंने उनके पास जाकर पूछा कि मैं किस विषय पर और कैसे ध्यान करूँ। वे बोले, ''तुझे भगवान का जो भी रूप अच्छा लगता हो, उसी का ध्यान कर।'' – ''मैं अमुक रूप का ध्यान करूँ क्या?'' उन्होंने उत्तर दिया, ''हाँ, वही कर।''

मैं प्रसन्न मन से एक चट्टान पर बैठकर ध्यान करने लगा। मेरी आयु कम थी, अत: मैं पाँच मिनट के भीतर ही चंचल हो उठा। पास में ही एक झरना बह रहा था। मैं उठा और पहाड़ पर खिल रहे सुन्दर फूलों को एकत्र करने लगा। फूलों से एक अद्‌भुत सुगन्ध निकल रही थी – मानो धूप और चन्दन के सुगन्धों का सम्मिश्रण हो। मैं फूलों के सुगन्ध का आस्वादन कर रहा था, तभी महाराज ने अपने आसन से ही मुझे देखा और चिल्लाये, ''उन्हें सूँघ मत। जंगली फूलों के गन्ध से तू बीमार पड़ जायेगा।'' मैंने कुछ फूल ले जाकर उन्हें दिखाये। उन्होंने भी उनकी सुगन्ध लेकर प्रसन्नता व्यक्त की और बोले, ''थोड़े-से ये फूल तोड़कर माँ की पूजा के लिये साथ ले चल।'' मैंने थोड़े-से फूल एकत्र कर लिये। इसके बाद हम लोग वनभोज की जगह पर आये। हमारा भोजन तैयार हो चुका था। हमारे खाने के लिये बैठने के पूर्व महाराज ने मुझसे कुछ भजन सुनाने को कहा। भजन के बाद हमारा भोजन प्रारम्भ हुआ।

एक अन्य दिन हम लोग महाराज के साथ एक दूसरे रास्ते से उस पहाड़ पर चढ़े। वहाँ से हमने सूर्यास्त का दर्शन किया। उस समय महाराज ने मुझसे यह भजन सुनाने को कहा – (भावार्थ)

हे मन, दिन तो ढल चुका,
तुम बैठे-बैठे क्या कर रहे हो?
इस भवसागर से पार जाने के लिये
तुमने क्या तैयारी कर रखी है?
आयुरूपी सूर्य अस्ताचल को जा रहा है,
देखकर भी तुम इसे नहीं देख रहे हो,
मोह-माया में डूबे रहकर
तुम अपना तत्त्वज्ञान खो चुके हो ।।

उनके आदेश पर मैंने यह भजन गाया। सुनते-सुनते वे भाव में डूब गये। भजन समाप्त होने के बाद भी कुछ देर वे उसी भाव में स्थित रहे। अन्धकार घिरने लगा था और हम लोग अपने डेरे पर लौट आये। उस बार विन्ध्याचल में केवल तीन दिन बिताने की योजना होने के बावजूद महाराज वहाँ इक्कीस दिन बिताकर बेलूड़ मठ लौटे थे। ○○○

शास्त्रमय श्रीरामकृष्ण

स्वामी कृतार्थानन्द
रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ

(प्रस्तुत लेख का मूल बांगला से हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ के स्वामी अनुग्रहानन्द जी ने किया है। सं.)

प्रकति की पाठशाला में शिक्षा

कामारपुकुर का छोटा-सा गदाधर अन्य दस बच्चों की तरह ही बहुत उत्साह के साथ विद्यालय जाने लगा। क्योंकि वहाँ बहुत से मित्रों के साथ खेलने का अवसर मिलता था। इससे आकर्षित होकर वह विद्यालय जाने में रुचि लेने लगा। किन्तु वहाँ धनार्जन करनेवाली जिस विद्या को प्राप्ति करने के लिये लोग जाते हैं, गदाई (गदाधर) उसे ठीक से नहीं सीख सका। अंक गणित के पाठ में जोड़ना तो वह ठीक से समझ गया, किन्तु समस्या हुई घटाने के समय। बड़ी संख्या से छोटी संख्या को घटाने से जो शेष बच गया, उसे कहाँ रखूँ? सब कुछ तो पूर्ण से परिपूर्ण है ! पूर्ण से पूर्ण घटाने पर भी पूर्ण ही तो शेष बचा रहता है, इस हिसाब से घटाने का तर्क वहाँ टिकता नहीं। निश्चित रूप से गदाधर उस छोटी सी उम्र में ही समझ गया था कि वह सब शुभंकरी का गणित केवल धन-सम्पत्ति करने के लिये है। क्योंकि वे इस संसार में केवल दो बहुत शक्तिशाली अस्त्र लेकर आये थे। पहला अस्त्र था – उनकी अद्भुत निरीक्षण करने की शक्ति। उनकी वह दृष्टि पक्षपातग्रस्त नहीं थी। वह सभी प्रभावों, पक्षपातों से मुक्त-निरीक्षण-शक्ति थी। वैसी पक्षपातरहित निरीक्षण-शक्ति के बिना अध्यात्म के भवन में प्रवेश का अधिकार नहीं मिलता। अर्थात् विवेक-विचार चाहिये। बालक गदाई ने देखा और समझा कि अधिकांश लोगों का झुकाव चावल-केला बाँधने वाली विद्या (जीविकोपार्जन वाली विद्या) की ओर ही है। मात्र उतने से ही वे लोग सन्तुष्ट हैं। जैसे चूहे लाई को प्राप्त कर उसी को खाने में ही मस्त रहते हैं और भण्डार के भीतर रखे हुए चावल को जान नहीं पाते। गदाई ने देखा कि दो भाइयों ने जमीन के बीचो-बीच रस्सी रखकर सम्पति को बाँट लिया और उसके बाद किसी अज्ञात कारण से दोनों मर गये। लगा कि कोई उसके पीछे खड़ा होकर हँस रहा है। फिर मुमूर्षु रोगी को डॉक्टर स्वस्थ कर देने का मिथ्या आश्वासन दे रहा है। इस घटना पर भी भीतर से कोई हँस उठा। किन्तु गदाई समझता है कि मनुष्य की शक्ति की सीमा कितनी है। यह शिक्षा प्रकृति की पाठशाला से लेना गलत नहीं है। इस युक्तिपरक शिक्षा की प्रतिष्ठा ईश्वर में है। इसीलिये यह शिक्षा हृदय में दृढ़ भाव से बैठ जाती है। इसे किसी भी प्रकार मिटाया नहीं जा सकता। लगता है कि सबके हृदय में विद्यमान ईश्वर प्रत्येक क्षण हृदय में आविर्भूत होकर मनुष्य को यह आश्वासन-वाणी दे रहे हैं, "मैं हूँ, आँखें खोलकर ठीक से देखो, मैं कितने रूपों में विराजमान हूँ।" जिसकी देखने की आँखें हैं, जिसका मन सावधान है, धीर एवं संयमित है, वह सचमुच ही देख पाता है।

गदाई का एक दूसरा स्वाभाविक गुण था, वह है – मेधा। यह एक विलक्षण अपराजेय शक्ति है, जिस शक्ति से शक्तिशाली होकर भारतीय ब्राह्मण अनेक युगों से अन्यान्य तीन वर्णों पर शासन करते आये हैं। मनुष्य के शरीर में मेधा नामक नाड़ी एक अति सूक्ष्म शक्ति का आधार है। जिसका द्वार एकमात्र अखण्ड ब्रह्मचर्य के द्वारा खोलना सम्भव है। साधारण व्यक्ति इस मेधा का प्रकाश न समझ पाते हैं और न देख पाते हैं। सामान्य रूप से अधिकांश लोग समझते हैं कि स्मृति-शक्ति के बहुत प्रेरक होने से ही व्यक्ति मेधावी कहा जाता है। यह धारणा सम्पूर्ण गलत है। मेधा शक्ति का क्षेत्र विशाल है और उसकी अभिव्यक्ति भी अनेक प्रकार से होती रहती है। उनमें से एक है, किसी भी सुने हुए या पढ़े हुए विषय को कंठस्थ कर बहुत दिनों बाद भी ठीक-ठीक एवं सही सन्दर्भ में उसका प्रयोग करना। वचनामृत में इस प्रकार के असंख्य उदारहरण हैं। किसी ने ठाकुरजी से पूछा कि सांसारिक कार्यों की व्यस्तता में कैसे ईश्वर को स्मरण किया जाय? तत्काल ठाकुर के मानस-पटल पर शैशव में कामारपुकुर ग्राम में देखा हुआ एक साधारण बाजार का दृश्य आ गया। उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया, "क्यों? अभ्यास-योग? अभ्यास के द्वारा उस क्षेत्र में बढ़ई लोगों की लड़कियाँ चिउड़ा बेचती हैं। ढेंकी का मूसल गिर रहा है, एक हाथ से धान को ढेंकी के नीचे ढकेल दे रही है। इधर ग्राहक भी आया है। उधर ढेंकी चल रही है। फिर ग्राहक से बात भी कर रही हैं। बच्चे को दूध पिलाना, ढेंकी का मूसल गिरना, धान को ढेंकी के नीचे बढ़ा देना

और कुटे हुए धान को ढेंकी के नीचे से निकालना, फिर ग्राहक के साथ बात करना, वे ये सभी कार्य एक साथ कर रही हैं। इसी का नाम है अभ्यास योग।[१] इतना स्वाभाविक एवं सहज एक दैनन्दिन दृश्य को अभ्यास योग के उदाहरण के रूप में उपयोग करना कम बात नहीं है। इसी प्रकार कलकत्ता के मैदान में पेड़ में टेक देकर खड़े हुए साहेब के लड़के को देखकर बाँकेबिहारी श्रीकृष्ण का स्मरण और उनका उद्दीपन होना, सर्कस की महिला को दौड़ते हुए घोड़े पर एक पैर पर खड़ी रहने के दृश्य को देखकर साधना की बातों की स्मृति होना,[२] यहाँ तक कि मदिरालय के पास से जाते समय मतवाले शराबियों को देखकर परमकारण एवं आनन्दमय ईश्वर का उद्दीपन होना, इन सभी घटनाओं से उस मेधाशक्ति के स्फुरण का परिचय मिलता है।

पण्डित एवं निरक्षर

श्रीरामकृष्ण परा और अपरा विद्या में दक्ष न होने पर भी सच्चे अर्थों में पण्डित थे। प्रश्न उठता है, क्या कोई व्यक्ति केवल लिखना-पढ़ना जानने से ही पण्डित हो सकता है? इसका उत्तर आदिशंकराचार्य जी ने दिया है। वे अपने गीता-भाष्य (२/११) में उल्लेख करते हैं, पण्डा अर्थात् जिसमें आत्मपरक बुद्धि है, वही पण्डित कहलाने के योग्य है।[३] पुन: बृहदारण्यक उपनिषद (३/५/१) के भाष्य में भी उन्होंने कहा है कि आत्मा को विशेष रूप से जानना ही पाण्डित्य है।''[४] अत: श्रीरामकृष्ण देव को शास्त्रानुसार यथार्थ पण्डित कहने में कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु वे स्वयं इस प्रसिद्धि को सुनना कभी भी पसन्द नहीं करते थे।

जिस उम्र में बच्चे बहुत चंचल होते हैं, साथियों के साथ खेल-कूद छोड़कर कुछ भी नहीं समझते हैं, उस बाल्यावस्था में छोटा-सा बालक गदाई मनोरंजनप्रिय होने पर भी जन्मजात स्वाभाविक मेधा शक्ति की प्रेरणा से पण्डितों के शास्त्र-चर्चा को, तर्क-वितर्क को बड़े ध्यान से सुनता था एवं आवश्यकता होने पर वह अपने विचारों से तर्क-मीमांसा, समस्या का समाधान भी कर देता था। बालसुलभ सरलता के साथ-साथ मेधाप्रसूत इस प्रकाण्ड ज्ञान से वह उपस्थित पण्डितों को आश्चर्यचकित कर देता था। आदिशंकराचार्य जी ने अपने बृहदारण्यक-भाष्य में 'बाल्य' शब्द की एक सुन्दर व्याख्या की है, जो श्रीरामकृष्ण देव के व्यक्तित्व के माध्यम से विशेष रूप से प्रस्फुटित हो उठी है। अद्वैतानुभूति के बाद भी वे स्वयं को असहाय सरल बालक मानते थे। जिनके मुख से नि:सृत एक-दो शब्दों से स्वयं तोतापुरीजी का भी ज्ञान का द्वार उन्मुक्त हो जाता है अथवा वे नवीन विचारधारा में रूपान्तरित होकर प्रवाहित होते रहते हैं, वही श्रीरामकृष्ण देव क्यों बाल-सुलभ आचरण करते हैं? उनकी अपनी ही व्याख्या है कि अहंकार को किसी भी तरह सिर उठाने न देना। बालक का अर्थ है – असहाय शिशु, जो माँ को छोड़कर और कुछ भी नहीं जानता है। किन्तु, चरम आध्यात्मिकता के शिखर पर पहुँचने के बाद अहंकार तो अपने से ही झड़ जाता है। फिर उस बाल्यभाव की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर है – शास्त्र-वाक्यों के दृष्टान्तों की सत्यता को प्रमाणित करना। बृहदारण्यक उपनिषद के तृतीय अध्याय, पंचम ब्राह्मण में है, ब्रह्मज्ञ-पुरुष तीनों प्रकार की सांसारिक एषणाओं, कामनाओं को त्याग कर निर्विशेष आत्मज्ञान को प्राप्त कर 'बाल्य-भाव' से अर्थात् उसी आत्मज्ञान रूपी शक्ति का आश्रय लेकर विचरण करते हैं। आचार्यों के मतानुसार बाल्य शब्द 'बल' शब्द से उत्पन्न हुआ है। बृहदारण्यक उपनिषद में उन्होंने 'बल' शब्द की ऐसी ही व्याख्या की है – **बलं नाम आत्मविद्यया अशेषविषयदृष्टितिरस्करणम्।** अर्थात् आत्मज्ञान के द्वारा बाह्य जगत को विषय के रूप में बिल्कुल ही नहीं देखने को बल कहते हैं। फिर कैसे देखेगा? श्रीरामकृष्ण देव ने वचनामृत में इसका उत्तर स्वयं ही दिया है – ''देख रहा हूँ कि यह सम्पूर्ण जगत ईश्वरमय है।'' उन्होंने ठीक ही कहा है, उन्होंने जगत को कभी भी ईश्वर से अलग नहीं देखा, उन्होंने समाज की दृष्टि से घृणित पतिताओं में भी ईश्वर के अस्तित्व को देखा है, उन्होंने शराबियों के निरर्थक, क्षणिक-आनन्द में उत्साह देते हुए कहा – ''बहुत अच्छा हो रहा है, चलने दो।'' क्योंकि उनके पास ये सभी निम्नस्तरीय आनन्द भी उसी परमानन्द का एक-एक अंश है। यह बात भी उपनिषद में ही मिलती है। श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में केवल 'ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या' ही नहीं है, बल्कि इससे भी बहुत अधिक है - ब्रह्म सत्य है, जगत सत्य है, यह जगत ब्रह्म में प्रतिष्ठित है। इसलिये श्रीरामकृष्ण देव निरक्षर होते हुए भी पण्डित हैं, शास्त्र न पढ़कर भी शास्त्रज्ञ और शास्त्रमय हैं। उनकी समस्त चेतना में, मानो रग-रग में शास्त्र प्रवेश कर चुका है। फिर ब्रह्मसूत्र के सूत्र क्रमांक ३/४/५० की व्याख्या में आचार्य शंकराचार्य जी ने बृहदारण्यक उपनिषद के उस 'बाल्य' शब्द का ही एक दूसरा अर्थ बताया है, वह भी श्रीरामकृष्ण देव के बाल्यभाव के साथ

मिलता है। आचार्य शंकराचार्य जी ने विरोधियों के प्रश्नों का खण्डन करते हुए कहा है, ज्ञानी संन्यासी के लिये 'बाल्यभाव' का अर्थ यथेच्छाचार अथवा मनमौजीपन नहीं है। बाल्यभाव का सही तात्पर्य है, जैसे बालक अपरिपक्व इंद्रियों के कारण अपने ज्ञान, विद्या और धार्मिकता इत्यादि को दूसरों के समक्ष व्यक्त करने की कोशिश नहीं करता है तथा दम्भ एवं दर्प आदि से सर्वदा मुक्त रहता है। ब्रह्मज्ञ संन्यासी भी ठीक उसी प्रकार रहकर आचरण करते हैं।

वेद-वेदान्त के पार जाने की अनुभूति

स्वामी सारदानन्दजी के द्वारा लिखित 'श्रीरामकृष्ण लीलाप्रसंग' में हम लोग श्रीरामकृष्ण देव की अद्भुत-वाणी देखते हैं, "यहाँ की अनुभूति वेद-वेदान्त के पार जा चुकी है।" क्या इसका अर्थ यह है कि उन्होंने वेद-वेदान्त में लिपिबद्ध विवरण के बाहर कुछ अनुभूति की थी? जो अनुभूति वेद-वेदान्त के बाहर है, उसे कैसे स्वीकार किया जा सकता है? फिर तो अबोध शिशु, पागल अथवा शराबी में भी मनमौजी बहुत कुछ आकाशकुसुम कल्पना देखी जाती है, क्यों उन्हें आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जायेगा? इसके उत्तर में कहना पड़ता है कि आत्मज्ञानी की उपलब्धि श्रुति, युक्ति और अनुभूति, इन तीनों स्तम्भों के ऊपर प्रतिष्ठित है। उनका सम्पूर्ण आध्यात्मिक 'दर्शन' श्रुति-वाक्य का प्रतिफलन होगा, केवल मनमौजीपन नहीं अपितु तर्क-संगत होगा और पहले के आत्मज्ञानियों की अनुभूतियों के समान होगा, उनका समर्थक होगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि संसार के अधिकांश लोगों की धारणा अथवा सिद्धान्तों के साथ आत्मज्ञानी के विचारों का मेल होगा। श्रीरामकृष्ण देव की अनुभूतियों की वास्तविक प्रमाणिकता – सर्वशास्त्र की स्वीकृति है, सभी शास्त्रों से सादृश्य है। इसे केवल भैरवी ब्राह्मणी ने ही प्रमाणित नहीं किया था, बल्कि ईंदास के गौरी पण्डित, पद्मलोचन, नारायण शास्त्री, वैष्णवचरण और शशधर तर्क-चूड़ामणि भी ठीक से विचार-विमर्श कर शास्त्र की उक्ति के साथ श्रीरामकृष्ण देव की अवस्था की समानता देखकर विस्मित तथा अभिभूत हुए थे। श्रीरामकृष्ण देव के शास्त्रानुकूल अथवा शास्त्रमय जीवन के सम्बन्ध में पण्डित, साधक एवं सिद्ध सभी एकमत हुए हैं। शास्त्र के पार जाने के लिये पहले शास्त्रानुसरण करना आवश्यक है। हिन्दू धर्म के प्रधान ग्रन्थ वेद की एक मौलिक विशेषता है – वेद कभी भी नहीं कहता है कि ऋषि-मुनियों की अनुभूति से उत्पन्न जो कुछ उसमें लिपिबद्ध है, उसके बाहर कोई भी दर्शन या अनुभूति होना बिलकुल असम्भव है। बल्कि वह एक असंख्य पृष्ठों वाली खुली पुस्तक के समान है, जिसके बहुत से पृष्ठ भर जाने के बाद भी अनेक पृष्ठ खाली हैं। धर्म सबके अन्तःकरण में निहित है, इसलिये प्रत्येक व्यक्ति की धर्म की अनुभूति भिन्न-भिन्न भी हो सकती है।

एक प्रसिद्ध बात है, जो वास्तविक संन्यासी हैं और जिनका जीवन सम्पूर्ण रूप से वेद-वेदान्त के सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित है, एकमात्र वे ही वेद-वेदान्त शिरोमणि के योग्य हैं, एकमात्र वे ही वेद-वेदान्त के पार जाने की क्षमता रखते हैं। श्रीरामकृष्ण देव ने अपने अन्तरंग शिष्यों से कितने दर्शनों की बातें कही हैं और उनमें से कितने लिपिबद्ध हुए हैं! फिर भी देखा जाता है कि उनके बहुत-से दर्शनों की बातें वेद-वेदान्त में नहीं मिलती हैं। श्रीरामकृष्ण देव का जीवन शास्त्रमय था और शास्त्रानुसार उनका आचरण कभी बालक, कभी पिशाच, फिर कभी पागल या कभी जड़ पदार्थ के समान होने पर भी वे कभी भी स्वेच्छाचारिता या मनमौजीपन के शिकार नहीं हुए। क्योंकि यह भी शास्त्र का ही सिद्धान्त है। सुरेश्वराचार्यजी ने अपने 'नैष्कर्म्यसिद्धि' नामक ग्रन्थ में इस विचार को स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि अद्वैत-तत्त्व में प्रतिष्ठित व्यक्ति कभी भी स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता है। क्योंकि ऐसा नहीं मानने पर कुत्ता और ब्रह्मज्ञानी में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा। कुत्ता अशुद्ध वस्तु खाता है और कभी तत्त्वज्ञानी भी वैसा ही करते हैं।[६] इसलिये हम लोग देखते हैं कि श्रीरामकृष्ण वेश्याओं में मातृ-दर्शन करने पर भी व्यवहार में काफी दूरी बनाकर चलते थे। यहाँ तक कि सुरत-क्रिया में रत नारी-पुरुष को देखकर उन्हें समाधि होने पर भी, कभी इसे महत्त्व नहीं दिया। बल्कि दक्षिणेश्वर में आगत किसी-किसी साधुओं के अशुद्ध चरित्र को देख-सुनकर उन्होंने उन साधुओं को आध्यात्मिक मार्ग के विषय में सावधान कर दिया। तान्त्रिक साधक उन्हें साथ लेकर भैरवी चक्र में बैठकर मदपान कर मतवाले होकर आशोभनीय आचरण करने लगे, किन्तु वे स्वयं मदिरा का नाम सुनते ही जगत-कारण ईश्वर की स्मृति से उद्दीपित होकर गहन समाधि में मग्न हुए थे। यही शास्त्रमय जीवन का ज्वलन्त उदाहरण है।

यहाँ तक कि कुछ अवस्थाओं का उल्लेख तो शास्त्र में भी मिलता नहीं है। इसके सिवाय साधना करने पर भी जिन कुछ अवस्थाओं की अनुभूति ठाकुरजी ने की है,

उसका अनुभव सभी लोग नहीं कर पाते। कभी-कभी इस प्रकार की अनुभूति का वर्णन भी उन्होंने भक्तों से किया है। उन्होंने स्वयं ही अपनी वाणी से महिमाचरण, मास्टर और राखाल आदि को एकान्त में बताया है कि उनके अन्दर विशेष कुछ है। श्रीरामकृष्णवचनामृत में हमें प्राप्त होता है — "यह अवस्था जब हुई, ठीक उससे पहले मुझे दिखा दिया कि कैसे कुलकुण्डलिनी-शक्ति जाग्रत होकर क्रमश: सभी कमल की पंखुड़ियाँ प्रस्फुटित होने लगीं और समाधि लग गयी।... देखा कि मेरे जैसा बाईस-तेईस वर्ष का एक लड़का सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर जाकर जीभ से योनि रूप कमल के साथ रमण कर रहा है ! पहले गुदा, लिंग और नाभि। चतुर्दल, षड्दल तथा दशदल कमल सभी जो अधोमुखी थे, वे सभी उर्ध्वमुखी हो गए।... अन्त में सहस्रदल कमल प्रस्फुटित हुआ।[७] लगता है कि उनकी शास्त्रातीत अनुभूतियाँ अनुपम हैं। हमलोग एक दूसरी अनुभूति का उल्लेख 'श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग' में पाते हैं। वहाँ पर ठाकुरजी ने महामाया के सृष्टि-स्थिति-संहार कारिणी शक्ति के रूप का दर्शन किया। उन्होंने देखा कि एक गर्भिणी नारी प्रकट होकर उनके सामने ही एक शिशु को जन्म देकर बड़े स्नेह से उसे स्तन-पान कराने लगी और थोड़ी देर के बाद भयंकर हिंसक रूप धारण कर शिशु को खा गयी। वचनामृत में भी इस प्रकार की मौलिक अनुभूतियों की बातें उन्होंने कहीं हैं – "महामाया की कैसी माया है, उसे एकदिन उन्होंने दिखाया। कक्ष में छोटी-सी ज्योति धीरे-धीरे बढ़ने लगी और सारे संसार को ढँकने लगी ![८]

शास्त्र के चरण-चिन्हों का अनुसरण

दक्षिणेश्वर में कितने लोगों ने श्रीरामकृष्ण से वार्तालाप की है। कितने लोगों ने उनके साथ रात्रि में निवास किया। कई लोगों ने रात-दिन उन्हें देखा है। किन्तु श्रीरामकृष्ण के ऐसे शुद्ध सुन्दर नरलीला को बहुत समीप से देखने पर भी उनके सम्बन्ध में मूर्ख, पागल और मनमौजीपन के विशेषण के अतिरिक्त दूसरा कुछ विशेष बहुत कम लोगों को ही लगा था। उन्होंने साधारण लोगों की दृष्टि के अतीत जाकर असंख्य निष्ठावान साधकों को हाथ पकड़कर एक-एक कर अध्यात्म-मार्ग के समस्त बाधा-विघ्नों से पार कराकर उन्हें लक्ष्य तक पहुँचा दिया है। जो जिस मार्ग का साधक है, उन्होंने उसे उस मार्ग से ही आगे बढ़ाया है। यहाँ तक कि उन्होंने अपने संन्यास गुरु तोतापुरीजी को भी पूर्व-संस्कारजनित दुर्बलता अग्नि के सम्बन्ध में कट्टरता और उससे उत्पन्न क्रोध से मुक्त कर दिया था। यह तो उच्च-स्तर के साधकों की बातें हुईं। किन्तु ठाकुरजी बहुत साधारण लोगों को भी शास्त्र में निहित सत्य-तत्त्वों को प्रचलित कहानी के द्वारा सुनाकर आनन्दित होते थे। जैसे, ममतामयी माँ सन्तानों के पेट की पाचन-शक्ति के अनुसार ही जिसको पेट में जो पचता है, उसे वैसा ही खाना बनाकर देती है। ठाकुरजी भी ठीक वैसा करते थे। उनके जीवन का प्रत्येक पग शास्त्रवाणी के अनुसार था। उन्होंने जितनी कहानियाँ और उपमाएँ सुनाईं हैं, प्राय: वे सभी शास्त्र से ली गई हैं। 'श्रीरामकृष्ण -वचनामृत' में उनके द्वारा एक घटना का उल्लेख है, जिसमें एक व्यक्ति ने भगवान से एक वर माँगने के नाम पर चालाकी से तीन-चार वर माँग लिए थे। उस व्यक्ति ने यह वर माँगा था कि वह पोते के साथ बैठकर सोने की थाली में खाना खा सके। इस एक वर में ही उसके वंश की वृद्धि भी हुई, ऐश्वर्य भी मिला और आयु भी बढ़ गयी।[९] इस दृष्टान्त को शास्त्र में कहते हैं — 'वृद्धकुमारीन्याय' (यहाँ 'न्याय' का अर्थ उपमा है) फिर चार अन्धों के द्वारा हाथी देखने की कहानी है।[१०] शंकराचार्यजी ने भी छान्दोग्य उपनिषद के पंचम अध्याय, अष्टादश ब्राह्मण और प्रथम मन्त्र के अपने भाष्य में इसका उल्लेख किया है। एक दूसरे महत्त्वपूर्ण उदाहरण में ठाकुरजी के श्रीमुख से नि:सृत वाणी के साथ शास्त्र की सुन्दर उपमा मिलती है। ठाकुरजी कहते हैं, "एक व्यक्ति ने अपने मित्र से कहा, अरे ! कल देखा कि वह मकान चरमराकर गिर गया।" उसके मित्र ने कहा, "रुको ! एकबार अखबार में देख लूँ।" मकान के चरमराकर गिरने का अखबार में बिल्कुल ही सूचना नहीं है। तब उस व्यक्ति ने कहा, "ये बात सत्य नहीं है।"[११] **(क्रमश:)**

सन्दर्भ सूची

१. श्रीरामकृष्णकथामृत अखंड,पृ ३६१ **२.**वही, पृ. १३९
३. पण्डा आत्मविषया बुद्धि: येषां ते पण्डिता: ।
४. एतद् आत्मविज्ञानम् पाण्डित्यम् ।
५. आन्तरो भावविशेषो वालस्य अप्ररूढ़ेन्द्रियत्वादिं इह वाल्यम् आशीयते । यथा बाल: अप्ररूढेन्द्रियतया न परेषाम् आत्मानम् आविष्कृतम् ईंगते, तद्वद् ज्ञानाध्ययनधार्मिकत्वादिभि: आत्मानम् अविख्ययपयन् दन्तदर्पादिरहितो भवेत् ।
६. बुद्धाद्वैतसतत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि ।
शुनां तत्त्वविदाञ्चैव को भेदोऽशुचिभक्षणे ॥
७. कथामृत पृ. ८९३-९४, **८.** वही, पृ. ८९४ **९.** वही, पृ. ५९५ **१०.** वही, पृ. १५१. **११.** वही, पृ. ८४७-४८

आध्यात्मिक जिज्ञासा (३)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

प्रश्न – महाराज, ठाकुर को 'अवतार-वरिष्ठ' क्यों कहा जाता है? राम, कृष्ण, क्या ये लोग कम है?

महाराज – वे हमारे ठाकुर हैं न, इसलिए वरिष्ठ हैं। (सभी हँसते हैं) वरिष्ठ कहने के कारण एक दृष्टि की बात कहता हूँ। तब प्राचीन काल में मनुष्य का जीवन सहज सरल था। उसकी समस्याएँ भी कठिन नहीं थीं। जितने दिन बीत रहे हैं, उतने मानव-जीवन में जटिलता बढ़ती जा रही है। समस्याएँ भी जटिल हो रही हैं और समाधान भी कठिन हो रहा है। इतनी कठिन और जटिल समस्याओं के समाधान के लिए श्रीरामकृष्ण में जो विलक्षण शक्ति प्रकाशित हुई है, उसकी प्राचीन काल में आवश्यकता नहीं थी। अभी उस शक्ति की आश्यकता है। इसलिये जब अवतार आते हैं, तब आवश्यकतानुसार अपने भीतर से, अनन्त शक्ति में से जितनी आवश्यकता है, वे उतनी ही प्रकट करते हैं। अनन्त शक्ति को प्रकट करने से कुछ लाभ तो है नहीं, कोई ग्रहण नहीं कर सकेगा। इसलिए जब जैसी शक्ति की आवश्यकता है, तब उस अवतार में वैसी ही शक्ति का प्राकट्य होता है। श्रीरामकृष्ण में वर्तमान युग की समस्याओं के समाधान के लिए जो शक्ति प्रकट हुई है, वह असाधारण है। इस असाधारण शक्ति की अभिव्यक्ति के लिये उन्हें अवतार-श्रेष्ठ कहा जाता है। एक यह दृष्टि है।

दूसरी दृष्टि है कि प्राचीन काल में जगत छोटे-छोटे भागों में विभाजित था। एक भाग के निवासियों का दूसरे भाग के निवास से सम्पर्क नहीं होता था। इससे कहीं, कोई समस्या होने पर केवल उसी भाग के निवासी उसमें संयुक्त होते थे। वर्तमान में विज्ञान की उन्नति के कारण मानव के कार्य-कलाप सर्वत्र बिना बाधा के हो रहे हैं। इसलिए संसार के किसी भी भाग में समस्या के उत्पन्न होने पर वह पूरे विश्व की समस्या बनकर खड़ी हो रही है। वर्तमान में ठाकुर ने आकर जिन समस्याओं का समाधान किया है, उससे सम्पूर्ण संसार के लोग लाभान्वित हो रहे हैं। इस विशालता, व्यापकता को देखकर भी उन्हें अवतारवरिष्ठ कहा जाता है। प्राचीन काल में अवतारों का कार्यक्षेत्र सीमित था। ठाकुर का क्षेत्र असीमित है। इस दृष्टि से उन्हें अवतारवरिष्ठ कहा जाता है। ऐसा नहीं होने से अवतारों में कोई श्रेष्ठ और कोई निकृष्ट होने पर उन्हें अवतार नहीं कहा जा सकता है। भगवान के अवतार भगवान अनन्त हैं, उन्हें विभाजित नहीं किया जा सकता। उन्हें सीमित नहीं किया जा सकता। अत: प्रत्येक अवतार में अनन्त शक्ति है। किन्तु उसका विकास युग की आवश्यकता के अनुसार हुआ है।

महाराज ! यह जो शक्ति का प्रकाश है वह तो जड़ शक्ति नहीं है आध्यात्मिक शक्ति है।

महाराज – हाँ, जड़शक्ति नहीं है, आध्यात्मिक है। प्राचीन काल में अवतार अस्त्र-शस्त्र लेकर आये हैं। किन्तु इस बार 'प्रणाम अस्त्र' है। गिरीश बाबू कहते थे – इस बार कोई अस्त्र नहीं है। क्या किसी अवतार ने कहा है कि मैं कुछ नहीं हूँ, मैं कुछ नहीं हूँ? किसी अवतार ने नहीं कहा। ठाकुर ने बार-बार कहा है। यह जो आत्म-गोपन है, इसे ठाकुर में जैसा देखा जाता है, वैसा किसी दूसरे अवतार में नहीं देखा जाता। या जिन लोगों ने अवतारों का वर्णन किया है, वे लोग इस भाव को पसन्द नहीं करते थे। अनन्त शक्ति और अलौकिक चमत्कार पर ही मानो वे लोग

अधिक विश्वास करते थे। ठाकुर में अनन्त शक्ति है, हमलोग जानते हुए भी, साधारण व्यक्ति के समान उनको जैसे ग्रहण कर पा रहे हैं, पहले के अवतारों को इस प्रकार ग्रहण नहीं किया जाता था।

— महाराज ! आपने कहा कि व्यापकता की दृष्टि से श्रीरामकृष्ण की शिक्षा की परिधि विशालतम, व्यापक है। किन्तु पहले के अवतारों की शिक्षाएँ भी तो अब तक संसार में व्याप्त हैं।

महाराज – कितने दिन बाद?

— बहुत दिन बाद। आज विज्ञान का विकास होने के कारण वह संसार में आया है।

महाराज – अभी हम लोग बुद्ध को अवतार कहते हैं। पहले कितने लोग बुद्ध को जानते थे? बुद्ध का प्रभाव कितना था?

— किन्तु महाराज सभी अवतार तो सम्पूर्ण संसार के कल्याण के लिये ही आते हैं।

महाराज – आते हैं ठीक है, किन्तु लोक-कल्याण की आवश्यकता एक-एक समय एक-एक प्रकार (भिन्न समय में भिन्न प्रकार) की होती है। हमेशा एक समान आवश्यकता नहीं होती। संसार भी हमलोगों की दृष्टि में एक-एक समय एक-एक प्रकार से अभिव्यक्त होता है।

– किन्तु महाराज ! वर्तमान में ठाकुर की वाणी या ठाकुर का जीवन और उपदेश का प्रचार सम्पूर्ण जगत में आधुनिक विज्ञान की सहायता से या मानव की शिक्षा-पद्धति के प्रसार के साथ-साथ बढ़ा है। किन्तु अन्य अवतारों का तो ऐसा नहीं हुआ। तब हम लोग कैसे दावा कर सकते हैं कि वह दूसरी जातियों और दूसरे देशों के लिये है?

महाराज – अभी हमलोग हिसाब करके कहते हैं कि सम्पूर्ण संसार के कल्याण के लिए अवतार हैं, किन्तु पहले तो यह गणित नहीं था। जब ईसा मसीह का जन्म हुआ, तब सबकी धारणा थी कि वे यहूदियों के लिये आये हैं ईसा मसीह स्वयं भी यही मानते थे। एक सेमेरिटन (Samaritan) महिला को ईसा मसीह कह रहे हैं – ''तुम मुझसे क्यों माँगती हो, मैं तुमलोगों के लिये नहीं हूँ, मैंने तो यहूदियों के लिए जन्म लिया है।'' वह लड़की बहुत बुद्धिमान थी। उसने कहा – ''वह तो ठीक है, आप लोग जब टेबल पर बैठकर भोजन करेंगे, तब टेबल पर से गिरा हुआ भोजन का टुकड़ा क्या मैं नहीं ले सकती '' जो भी हो, ईसा मसीह के काल में जगत छोटा था। उन्होंने जहाँ जन्म लिया, वही उनका जगत था।

– चैतन्यदेव तो अवतार थे। किन्तु उनकी शिक्षा की परिधि भी बहुत छोटी थी।

महाराज – सब जगह ही जितने अवतार आये हैं, सभी क्षेत्रों में वही बात है। अभी हम लोग कृष्ण या बुद्ध को जिस रूप में जान या समझ रहे हैं, पहले क्या उन लोगों को वैसा जाना जाता था। संसार में बुद्धि का जितनी ही विस्तार हो रहा है, उनलोगों का भी विस्तार व्यापक हो रहा है। किन्तु ठाकुर की लीला असाधारण है। हमलोग यह भी कह सकते है कि क्या ठाकुर का नाम सभी जानते थे, या अभी सब लोग जानते हैं? नाम की बात नहीं, भाव की बात है। मैंने एक घटना सुनी है उसे कहता हूँ, सुनो !

दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध स्थान पर हमारे एक साधु भ्रमण हेतु गये थे। वहाँ एक पान की दुकान में श्रीश्रीमाँ का चित्र देखकर आश्चर्य चकित हो गये। उन्होंने पूछा – ''तुम्हें यह चित्र कहाँ मिला था?'' दुकानदार ने कहा – 'अभी याद नहीं है कि कहाँ से मिला है, किन्तु चित्र मेरे लिए मंगलकारी है।'' कितने आश्चर्य की बात है ! **(क्रमशः)**

(पृष्ठ १०७ का शेष भाग)

प्रभाव बढ़ता जाता है और उसी परिमाण में आध्यात्मिकता का ह्रास होता जाता है।

मेरे गुरुदेव त्याग की साकार मूर्ति थे। हमारे देश में संन्यासी होने वाले व्यक्ति के लिये यह आवश्यक होता है कि वह सारी सांसारिक सम्पत्ति तथा सामाजिक स्थिति का परित्याग कर दे और मेरे गुरुदेव ने इस सिद्धान्त का अक्षरशः पालन किया। ऐसे बहुत से लोग थे, जिनसे मेरे गुरुदेव यदि कोई भेंट ग्रहण कर लेते, तो वे अपने को धन्य मानते, और यदि वे स्वीकार करते, तो वे लोग उन्हें हजारों रुपये देने को प्रस्तुत थे, परन्तु मेरे गुरुदेव ऐसे प्रलोभनों से दूर भागते थे। काम-कांचन पर पूर्ण विजय के वे जीवन्त तथा ज्वलन्त उदाहरण थे। इन दोनों भावनाओं का उनमें पूर्ण अभाव था और इस शताब्दी के लिए ऐसे ही व्यक्तियों की नितान्त आवश्यकता है। ○○○

साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद (१५)

स्वामी आत्मानन्द

(स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनके द्वारा कलकत्ता में प्रदत्त इस प्रेरक व्याख्यान को स्वामी प्रपत्त्यानन्द द्वारा सम्पादित कर विवेक ज्योति के पाठकों हेतु प्रकाशित किया जा रहा है।)

उमा जो हैमवती हैं, हेम की कन्या हैं, वे मानों ब्रह्मविद्या-स्वरूपा हैं। जीवन में सबसे शोभनीय क्या है? जीवन में ब्रह्म विद्या ही सबसे शोभनीय है। मनुष्य के जीवन में सबसे शोभन यदि कुछ है, तो वह ब्रह्मविद्या है, ब्रह्म की शक्ति है। जैसे मनुष्य बड़ा सुन्दर दिखाई देता है। मनुष्य सुन्दर दिखाई देता है, तो उसका सौन्दर्य हमें कब तक आकृष्ट करता है, जब तक उसके भीतर प्राण या स्पन्दन है। उसके भीतर चैतन्य का प्रकाश है। यदि चैतन्य का प्रकाश बन्द हो जाय, तो व्यक्ति कितना भी सुन्दर हो, वह हमें आकर्षित नहीं कर सकता। क्योंकि वह मुर्दा है। उसके भीतर की जो आकर्षिणी शक्ति है, वह समाप्त हो जाती है। मात्र शरीर के सुन्दर होने से कोई व्यक्ति आकर्षित नहीं होता है। इस उदाहरण से यह सिद्ध होता है।

यहाँ कहा गया है कि यह साक्षात् ब्रह्मविद्या है और यह ब्रह्म की शक्ति है। शक्ति की कृपा से मनुष्य को ब्रह्म का बोध होता है। यहाँ एक भिन्न पक्ष रखा गया है। वह भिन्न पक्ष क्या है? शक्ति की कृपा से मनुष्य को बोध होता है कि ब्रह्म क्या है? ब्रह्म की शक्ति के माध्यम से ब्रह्म का बोध होता है, यह जो तत्त्व है, इस भक्तितत्त्व को केनोपनिषद में यहाँ रखा जा रहा है।

अभी तक जो हमने देखा, वह ज्ञान का पक्ष था। कैसा ज्ञान का पक्ष हो, कैसा चिन्तन का पक्ष हो। उसके पश्चात् यह भक्ति का पक्ष रखा जा रहा है। जैसे श्रीरामकृष्ण देव काली को ब्रह्ममयी, ब्रह्मशक्ति कहा करते थे। उनके जीवन में वेदान्त के गुरु के रूप में तोतापुरीजी आये। वे कट्टर अद्वैत वेदान्ती थे। वे माँ काली को नहीं मानते थे, पर श्रीरामकृष्ण देव ने उनको मना ही लिया, उन्हें समझा दिया और एक दिन वे समझ भी गये। तोतापुरीजी कहते हैं – ठीक कहता था बेटा, तेरी माँ काली ने बता दिया कि वह भी सत्य है। तोतापुरीजी पहले ब्रह्म की शक्ति को नहीं मानते थे। वे केवल ब्रह्म को ही सत्य मानते थे। जगत को त्रिकाल में मिथ्या मानते थे। श्रीरामकृष्ण कैसे थे? वे कहते थे, ब्रह्म सत्य और ब्रह्म की शक्ति भी सत्य। नित्य भी सत्य, लीला भी सत्य, ब्रह्म और ब्रह्म की शक्ति दोनों अभेद, जैसे दूध और उसकी धवलता, जैसे अग्नि और उसकी दाहकता। ठीक इसी प्रकार ब्रह्म और उसकी शक्ति में किसी प्रकार का भेद नहीं है। यह श्रीरामकृष्ण कहते थे कि माँ की कृपा से ब्रह्मज्ञान होता है। ब्रह्ममयी ले जाती हैं ब्रह्म के पास। ठीक यही श्रीरामकृष्ण के जीवन में दिखाई देता है। यहाँ पर उस सिद्धान्त का वर्णन है। कथा के माध्यम से हमारे समक्ष उसी सिद्धान्त को समझाया जा रहा है। सा ब्रह्मेति होवाच – उमा ने, उस ब्रह्मविद्या ने बता दिया, वह ब्रह्म ही है। तो कृपा से ब्रह्म का लाभ होता है। यहाँ ज्ञान और भक्ति का अपूर्व समन्वय हमें दिखाई देता है। उमा ने कहा – अरे, वह ब्रह्म की विजय थी। इन्द्र! तुमलोग व्यर्थ सोच रहे थे कि वह तुम्हारी महिमा है, वह तुम्हारी विजय है। इस अहंकार के कारण तुमलोग उस ब्रह्म को समझ नहीं पाये थे। अब इसके बाद के मन्त्र में कहते हैं –

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान् यदग्नि-र्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुस्ते ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ।।४.२।।

जो बाकी देवता हैं, उन देवताओं की अपेक्षा इन तीन देवताओं – अग्नि, वायु और इन्द्र की विशेषता हो गयी। क्यों हो गयी? इसीलिए विशेषता हो गयी कि इन तीनों ने समीप जाकर यक्षरूपी ब्रह्म को देखा था। ये ब्रह्मतत्त्व को भले ही न पहचान पाये हों, पर ब्रह्मतत्त्व तक पहुँच तो गये थे। इन्होंने ब्रह्मतत्त्व का एक रूप देखा था, भले ही प्रतीति नहीं हो पायी थी।

जैसे हम वेदान्त की साधना में देखते हैं, एक तो ब्रह्माकार वृत्ति है और दूसरी है, जिस समय वृत्ति दीप्ति में परिणत होती है। जब तक वृत्ति है, तब तक अज्ञान का आभास बना हुआ है, अहंकार का सूक्ष्म पर्दा बना हुआ है और जिस समय दीप्ति होती है, तब अहंकार का पूरा पर्दा निकल जाता है और तब जीवात्मा उस ब्रह्म की अनुभूति करती है। ऐसा अनुभव करता है कि मैं वही हूँ। वहाँ पर द्वैत का बोध ही नहीं होता है।

तो यहाँ अग्नि, वायु, इन्द्र उस ब्रह्म के पास जाते हैं, भले ही पहचान नहीं पाये थे कि यह ब्रह्म तत्त्व है। जब साधना करने लगते हैं, तो ब्रह्म तत्त्व की अनुभूति हुई, यह कहना बड़ा कठिन है। क्योंकि मनुष्य के जीवन में, साधनात्मक जीवन में झलकें तो आती हैं, इस प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं, पर मैं उस ब्रह्म का दर्शन कर पाया हूँ या नहीं, उसकी अनुभूति कर पाया हूँ या नहीं, यह हमें समझ में नहीं आता है, जब तक कि साक्षात् ब्रह्मविद्या मुझे स्वयं समझा नहीं देती है, भगवान की कृपा जब तक मुझे समझा नहीं देती है।

यहाँ पर यही कहा गया है। ये तीनों साधक हैं। अग्नि साधक है, वायु साधक है, इन्द्र साधक है। अग्नि किसका रूप है? अग्नि वाणी के प्रतीक हैं, वाणी के अधिष्ठाता देवता हैं। वायु को मन का प्रतीक माना गया है। वाणी और मन ये दोनों उस तत्त्व के समीप तक पहुँच कर उसे न पाकर वापस लौट आते हैं। हम वेदान्त में पढ़ते हैं – यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह अर्थात् वाणी और मन उसे न पाकर वापस चले आते है। ठीक वैसे ही अग्नि और वायु यक्ष के पास जाकर उसे न पहचान कर वापस लौट आते हैं। इन देवताओं के राजा इन्द्र हैं। इन्द्र ने ब्रह्म की प्रतीति कर ली। भगवान की कृपा इन्द्र पर हुई। उस ब्रह्मविद्या ने, ईश्वर की कृपा ने उन्हें बता दिया कि वह ब्रह्म ही था, जिसको इन्द्र ने देखा था, अग्नि और वायु ने देखा था। अन्य सभी देवताओं की तुलना में इन तीनों देवताओं की विशिष्टता हुई, क्योंकि उन्होंने समीप से जाकर के उस ब्रह्म के दर्शन किये थे। अब अगले मन्त्र में बताते हैं –

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान्देवान् स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्मपर्श स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ।।४/३।।

इसलिये इन्द्र अन्य सभी देवताओं में भी श्रेष्ठ हो गये, अग्नि और वायु की अपेक्षा भी श्रेष्ठ हो गये, क्योंकि इन्द्र ने समीप से ब्रह्म का स्पर्श किया था। उन्होंने ही सबसे पहले भगवती की कृपा से, ब्रह्मविद्या की कृपा से साक्षात् अनुभव किया कि यह ब्रह्म है। इन्द्र ने ही आकर अग्नि और वायु को बताया कि वह यक्ष ब्रह्म है।

हमें इस परम तत्त्व का बोध कैसे होता है? एक दिन हमने कहा था, हृदय रुपी अनुभूति की गुफा में इसका बोध होता है। महाभारत में 'यक्ष प्रश्न में एक श्लोक है। युद्धिष्ठिर से यक्ष ने प्रश्न किया था – **कः पन्थाः** – रास्ता कौन-सा है? उसके उत्तर में युद्धिष्ठिर ने कहा था –

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयोर्विभिन्ना
नासौमुर्नियस्यमतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः।।

धर्म का तत्त्व गुफा में बन्द है। किसकी गुफा है? बोध की गुफा है, अनुभूति की गुफा है, इसीलिये इस तत्त्व के दर्शन में कठिनाई आती है। क्योंकि इस गुफा में घुसने का साहस लोगों को नहीं होता है। उन्हें डर लगता है कि इस गुफा में घुसेंगे, तो पता नहीं यह कैसी गुफा है ! अन्धकार से भरी है या भूल-भुलैया में भटका देने वाली गुफा है। इसीलिये बहुत-से लोग इसमें प्रवेश करने का साहस नहीं कर पाते हैं, पर जो धीर होता है, साहसी होता है, वह इस अनुभूति की गुफा में प्रवेश करने की चेष्टा करता है और जब प्रविष्ट होता है तो मानो ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार करके 'मैं वही हूँ', इस प्रकार की अनुभूति करता है।

यहाँ भगवती की कृपा से इन्द्र मानों अनुभूति की गुफा में प्रविष्ट होते हैं और उस तत्त्व को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

वहाँ वायु नहीं गया, माने मन नहीं गया। वाणी नहीं गयी, इसका मतलब अग्नि नहीं जा पाया। अब इन्द्र बुद्धि के प्रतीक हैं। यह बोध की गुफा है। हमें अनुभूति या बोध बुद्धि में ही होता है। हमारी बुद्धि चैतन्य की आत्मा से प्रकाशित होती है। तब हम उस परम तत्त्व को प्राप्त कर लेते हैं। ये तीनों देवता अन्य देवताओं से श्रेष्ठ हैं और इन्द्र सभी देवताओं से श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे ही एकमात्र उस ब्रह्म तत्त्व का अनुभव करने में समर्थ हुए थे।

एक कथा के माध्यम से यहाँ तक बात रखी गयी। अब इसके पश्चात् वे समझाने की कोशिश कर रहे हैं। यह साधनात्मक पक्ष है। अभी तक जो हमने देखा था, वह विचार का पक्ष था। बहुत विचार किया गया। गुरुजी ने विचार के माध्यम से उपदेश प्रदान किया। उन्होंने कहा – अपने भीतर झाँको वत्स ! भीतर देखने की चेष्टा करो। एक आँखों का आँख है, कानों का कान है, प्राणों का प्राण है, वाणी की वाणी है और इस प्रकार गुरुजी ने शिष्य को उस चैतन्य तत्त्व की ओर बढ़ाने की चेष्टा की, यह प्रकरण हमने देखा। यह प्रकरण समाप्त हुआ। **(क्रमशः)**

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

६९. हर व्यक्ति अपने स्थान पर महान है

एक राज्य में जब कोई भी संन्यासी आते, तो वहाँ के राजा उनसे सदैव एक ही प्रश्न पूछा करते थे, "एक व्यक्ति संसार को त्याग कर संन्यास ग्रहण करता है और दूसरा संसार में रहकर गृहस्थी के सारे कर्तव्यों को पूरा करता है,– इन दोनों में से कौन-सा व्यक्ति महानतर है?" अनेक विद्वान संन्यासियों ने उनके इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया। कुछ ने कहा कि संन्यासी श्रेष्ठ है। सुनकर राजा ने उनसे अपनी बात सिद्ध करने को कहा। जब वे इसमें असफल रहते, तो राजा उन्हें विवाह करके गृहस्थ हो जाने का आदेश देते। आनेवाले कुछ अन्य संन्यासियों ने कहा, "अपने कर्तव्यों का ठीक-ठीक निर्वाह करनेवाले गृहस्थ ही महानतर हैं।" राजा ने उनसे भी अपनी बात प्रमाणित करने को कहा। जब वे लोग भी प्रमाण देने में असमर्थ रहे, तो राजा ने उन्हें भी गृहस्थ हो जाने की आज्ञा दी।

अन्त में एक तरुण संन्यासी का आगमन हुआ। राजा ने उनके समक्ष भी अपना वही प्रश्न रखा। उन्होंने उत्तर दिया, "हे राजन्, प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने स्थान पर महान है।"

राजा ने कहा, "इसे प्रमाणित करो।"

संन्यासी बोले, "हाँ, मैं इसे सिद्ध कर दूँगा, परन्तु इसके लिये आपको कुछ दिनों के लिये मेरे साथ आकर मेरे ही समान जीवन बिताना होगा। ऐसा होने पर ही मैं आपको अपनी बात प्रमाणित करके दिखा सकूँगा।"

राजा ने प्रस्ताव को स्वीकार किया और संन्यासी के पीछे-पीछे अपने राज्य के बाहर निकल पड़े। अनेक राज्यों को पार करते हुए दोनों एक बड़े राज्य में जा पहुँचे। उस राज्य की राजधानी में एक बड़ा समारोह मनाया जा रहा था। राजा तथा संन्यासी ने ढोल तथा नगाड़ों की ध्वनि के बीच मुनादी करनेवालों की भी आवाज सुनी। लोग अच्छे वस्त्रों में सुसज्जित होकर सड़कों पर उपस्थित थे और एक विशेष घोषणा की जा रही थी। राजा तथा संन्यासी भी वह तमाशा देखने के लिए खड़े हो गये। मुनादी करनेवाले जोर की आवाज में घोषणा कर रहे थे, "इस देश की राजकुमारी का स्वयंवर होने वाला है।"

राजकुमारियों का इस प्रकार अपने लिए पति चुनने की एक पुरानी प्रथा भारत में प्रचलित थी। अपने होनेवाले पति के विषय में हर राजकुमारी के अपने अलग-अलग विचार हुआ करते थे। कोई बड़ा सुन्दर पति चाहती थी, तो कोई खूब विद्वान, कोई अत्यन्त धनवान और कोई किसी अन्य गुण की अपेक्षा करती थी। पड़ोस के राज्यों के सारे राजकुमार अपनी सर्वोत्कृष्ट वेशभूषा में सज-धज कर राजकुमारी के सम्मुख उपस्थित होते थे। उन राजकुमारों के साथ भी कभी-कभी ऐसे भाट होते थे, जो उनका गुणगान करते और बताते कि राजकुमारी के लिये क्यों उन्हीं का वरण करना उचित रहेगा। राजकुमारी को आलीशान ढंग से सजे हुए एक सिंहासन पर बिठाकर सभा में चारों ओर ले जाया जाता था। वह उन सभी राजकुमारों के सामने जाती और उनका गुणगान सुनती। यदि राजकुमार उसे पसन्द नहीं आता, तो वह अपने वाहकों से आगे बढ़ने को कहती। उसके बाद उस नापसन्द राजकुमार की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया जाता था। परन्तु यदि राजकुमारी किसी राजकुमार के गुणों से सन्तुष्ट हो जाती, तो वह तत्काल उसके गले में वरमाला डाल देती और वह उसका पति हो जाता था।

राजा और संन्यासी जिस देश में आ पहुँचे थे, उसमें इसी तरह का एक रोचक स्वयंवर-समारोह होने वाला था। यह राजकुमारी सारे संसार में अद्वितीय सुन्दरी थी और उसका होनेवाला पति ही भविष्य में उसके पिता के राज्य का उत्तराधिकारी होने वाला था। राजकुमारी चाहती थी कि वह सबसे रूपवान पुरुष के साथ विवाह करे, परन्तु उसे उचित व्यक्ति मिलता ही न था। कई बार ऐसी स्वयंवर-सभाओं का आयोजन किया गया, परन्तु राजकुमारी को अपने मन के जैसा पति नहीं मिला। इस बार का स्वयंवर सबसे भव्य था और इसमें भाग लेने के लिये सर्वाधिक प्रत्याशी पधारे थे।

राजकुमारी को एक सिंहासन पर बैठाकर लाया गया और उसके वाहक उसे एक के बाद एक करके सभी राजकुमार के सामने ले गये। परन्तु उसने किसी की ओर देखा तक नहीं। सभी लोग निराश होकर सोचने लगे – तो क्या अन्य स्वयंवरों के समान भी इस बार का स्वयंवर भी निरर्थक ही सिद्ध होगा?

इतने में ही वहाँ एक अन्य तरुण संन्यासी आ पहुँचा। वह इतना सुन्दर था मानो सूर्यदेव स्वयं ही आकाश छोड़कर पृथ्वी पर उतर आये हों। वह आकर सभा में एक ओर खड़ा हो गया और सभा की कार्यवाही को देखने लगा। राजकुमारी का सिंहासन उसके निकट आया और उसने ज्योंही उस सुन्दर संन्यासी को देखा, त्योंही रुक गयी और उसके गले में वरमाला डाल दी। तरुण संन्यासी ने माला को पकड़ लिया और उसे फेंकते हुए बोला, "यह क्या बकवास है? मैं संन्यासी हूँ, मुझे विवाह से क्या मतलब?"

उस देश के राजा ने सोचा कि शायद निर्धन होने की वजह से ही यह राजकुमारी से विवाह करने का साहस नहीं कर रहा है। अत: वह बोल उठा, "देखो, मेरी कन्या के साथ तुम्हें मेरा आधा राज्य अभी और मेरी मृत्यु के बाद पूरा राज्य मिल जायेगा।" यह कहकर उसने उस माला को उठाकर एक बार फिर संन्यासी के गले में डाल दिया।

युवा संन्यासी ने एक बार फिर माले को निकालकर फेंकते हुए कहा, "बकवास, मुझे विवाह की बिल्कुल भी इच्छा नहीं है।" इसके साथ ही वह तत्काल सभा को छोड़कर बाहर चला गया।

वह राजकुमारी इस युवक पर इतनी मोहित हो गयी कि उसने कह दिया, "मैं इसी व्यक्ति से विवाह करूँगी, अन्यथा प्राण त्याग दूँगी।" राजकुमारी संन्यासी को लौटा लाने के लिए उसके पीछे-पीछे चल पड़ी।

तभी हमारे पहले संन्यासी ने, जो राजा को यहाँ तक लाये थे, उनसे कहा, "राजन्, चलिए, हम लोग भी इन दोनों के पीछे-पीछे चलें।" अत: वे दोनों पर्याप्त अन्तर रखते हुए उनका पीछा करने लगे।

राजकुमारी के साथ विवाह करने से मना करनेवाला वह युवा संन्यासी कई मील चलता रहा। एक जंगल के पास पहुँचकर वह उसी में प्रविष्ट हो गया। राजकुमारी भी उसके पीछे-पीछे जा रही थी; और उन दोनों के पीछे ये दोनों जा रहे थे। तरुण संन्यासी उस वन से भलीभाँति परिचित था और उसकी सभी पगडण्डियों को जानता था। उसने सहसा एक पगडण्डी पकड़ी और उस पर चलते हुए अदृश्य हो गया। राजकुमारी उसे ढूँढ़ नहीं सकी। काफी देर उसे तलाशने के बाद आखिरकार वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गयी और रोने लगी, क्योंकि उसे बाहर निकलने का रास्ता ज्ञात नहीं था। इतने में हमारे ये राजा तथा संन्यासी उसके पास गये और बोले, "रोओ मत, हम तुम्हें इस जंगल के बाहर निकलने का रास्ता बता देंगे, परन्तु अभी तो इतना अँधेरा हो गया है कि रास्ता दिखाई ही नहीं देता। यहाँ एक बड़ा-सा पेड़ है। आओ, हम लोग इसी के नीचे विश्राम करें। सबेरा होते ही हम तुम्हें रास्ता दिखा देंगे।"

उसी वृक्ष की एक डाली पर घोसला बनाकर एक छोटा-सा पक्षी, अपनी पत्नी तथा तीन बच्चों के साथ निवास करता था। उस छोटे पक्षी ने पेड़ के नीचे तीन लोगों को बैठे हुए देखा और अपनी पत्नी से कहा, "देखो, ये लोग हमारे यहाँ अतिथि के रूप में उपस्थित हैं, जाड़े का मौसम है, हमारे पास आग तो है नहीं। हमें क्या करना चाहिये?"

इतना कहकर वह उड़ गया और अपनी चोंच से एक जलती हुई लकड़ी का टुकड़ा उठा लाया। उसे उसने अतिथियों के सामने गिरा दिया। उन लोगों ने उसमें और भी ईंधन डालकर खूब अच्छी आग तैयार कर ली। परन्तु पक्षी को इससे भी सन्तोष नहीं हुआ।

वह अपनी स्त्री से फिर बोला, "बताओ, अब हमें क्या करना चाहिए? ये लोग भूखे हैं और इन्हें खिलाने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं है। हम लोग गृहस्थ हैं और हमारा कर्तव्य है कि जो कोई हमारे घर आये, हम उसे भोजन कराएँ। जो कुछ मेरी शक्ति में है, उतना तो मैं अवश्य करूँगा; मैं उन्हें अपना यह शरीर ही दे दूँगा।"

ऐसा कहकर वह आग में कूद पड़ा और भुन गया। अतिथियों ने उसे आग में गिरते देखा, उसे बचाने की चेष्टा भी की, परन्तु यह सब इतनी तेजी से हुआ कि वे उसे बचा नहीं सके।

पक्षी की स्त्री ने अपने पति का यह कार्य देखा, तो उसने मन-ही-मन सोचा, "ये लोग तीन हैं और उनके

भोजन के लिए मात्र एक छोटा-सा पक्षी है। यह पर्याप्त नहीं है। पत्नी के रूप में मेरा कर्तव्य है कि अपने पति के परिश्रमों को मैं व्यर्थ न जाने दूँ। मैं उन्हें अपना शरीर भी दे दूँगी।'' ऐसा कहकर वह भी आग में गिर पड़ी और भुनकर मृत्यु को प्राप्त हुई।

इसके बाद उनके तीन छोटे बच्चों ने देखा कि तीन अतिथियों के लिए तो उतना भोजन भी पर्याप्त नहीं होगा। वे बोले, ''हमारे पिता-माता से जो भी बन पड़ा, उन्होंने किया, परन्तु इसके बावजूद यह यथेष्ट नहीं होगा। अब हमारा धर्म है कि हम अपने पिता-माता के कार्य को आगे बढ़ाएँ। हमारे शरीर भी उन्हें अर्पित हो जायँ।'' यह कहकर वे सभी आग में कूद पड़े।

यह सब देखकर ये तीनों बड़े चकित हुए। वे लोग उन पक्षियों को भला खा भी कैसे सकते थे ! उन लोगों ने सारी रात उपवास किया। सुबह होते ही राजा तथा संन्यासी ने राजकुमारी को जंगल से निकलने का मार्ग दिखा दिया और वह अपने पिता के घर वापस लौट गयी।

तब संन्यासी ने राजा से कहा, ''देखिए राजन्, अब तो आपको पता चल गया कि हर व्यक्ति अपने क्षेत्र में महान है। यदि आप गृहस्थी में रहना चाहते हैं, तो उन चिड़ियों के समान रहिये, सदैव दूसरों के लिए अपना जीवन बलिदान कर देने को तत्पर रहिये; और यदि आप संसार को छोड़ना चाहते हैं, तो उस युवा संन्यासी के समान होइये, जिसके लिए वह परम सुन्दरी स्त्री और वह राज्य भी तिनके के समान त्याज्य था। यदि आप गृहस्थ होना चाहते हैं, तो दूसरों के कल्याण के लिए अपना जीवन अर्पित करने के लिए तैयार रहिये; और यदि आपको संन्यास-जीवन की इच्छा है, तो सौन्दर्य-धन तथा अधिकार की ओर आँख तक न उठाइये। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने स्थान पर महान है, परन्तु एक व्यक्ति का कर्तव्य किसी अन्य का कर्तव्य नहीं हो सकता।'' (३/२४-२७)

> **धर्म ही है भारत की वह जीवनी-शक्ति और जब तक हिन्दू लोग अपने पूर्वजों से प्राप्त उत्तराधिकार को नहीं भूलेंगे, तब तक संसार की कोई भी शक्ति उनका ध्वंस नहीं कर सकती।**
>
> **– स्वामी विवेकानन्द**

जय जय रामकृष्ण भगवान

स्वामी समर्पणानन्द

रामकृष्ण जय रामकृष्ण जय रामकृष्ण भगवान
रामकृष्ण जय रामकृष्ण जय रामकृष्ण शुभनाम।
जय जय रामकृष्ण भगवान,
जय जय रामकृष्ण शुभनाम।।
ज्ञान शक्ति बल वीर्य तेज भर
निराकार ही नाम रूप धर
धरानिवासी धरणीधर्ता
धन्य धन्य अहा! मानव लीला।
तज चक्र गदा, तज शूल पाश
धर भक्ति, पद्म, धर भस्म त्याग
धर ज्ञान शंख, धर ब्रह्म-नाद
अहा ! विष्णु सदाशिव साथ-साथ।
ह्रीं ॐ हरि शिव काली श्याम
श्री बुद्ध मुहम्मद सीता राम
ऋतं धर्म प्रभु निर्गुण गुणमय
शक्ति ब्रह्म अहा ! रामकृष्ण जय।
रामकृष्ण जय रामकृष्ण जय रामकृष्ण भगवान
रामकृष्ण जय रामकृष्ण जय रामकृष्ण शुभनाम।
जय जय रामकृष्ण भगवान,
जय जय रामकृष्ण शुभनाम।।

युगपुरुष अवतार हो

सतीश कुमार

ज्ञान के सागर तुम्हीं हो ज्ञान की पतवार हो।
आत्मज्ञान प्रदान करते ज्ञान के अवतार हो।।
इस जगत के तुम हो द्रष्टा सबके खेवनिहार हो।
चैतन्य करते प्राणियों को शक्ति के आगार हो।।
सृष्टि के कण-कण में व्यापक प्रकृति के भर्तार हो।
हर हृदय के देवता हो, शब्द का आकार हो।।
पतित को पावन बनाते, हृदय की झंकार हो।
पथ अनेकों एक ईश्वर, युगपुरुष अवतार हो।।

अच्छी आदतें डालो

ऋषभ के स्कूल में परीक्षा की छुट्टियाँ लग गईं। एक महीने बाद परीक्षाएँ शुरू हो जाएँगी। ऋषभ के पापा ने कुछ महीने पहले उसे टच स्क्रीन वाला स्मार्ट-फोन गिफ्ट किया था। स्कूल से लौटने के बाद वह अपना पूरा समय मोबाइल में गेम्स खेलने में बिता देता। पिताजी उसे बहुत समझाते कि गेम्स खेलने के साथ-साथ थोड़ी पढ़ाई भी कर लिया करो। ऋषभ कहता कि अभी तो परीक्षा में बहुत समय है, बाद में पढ़ाई करूँगा।

अब तो परीक्षा में केवल एक महीना बाकी रह गया है और बहुत सारे विषय पढ़ने हैं। ऋषभ को भी लगा कि अब तो seriously पढ़ाई शुरू कर देनी चाहिए। वह थोड़ी देर पढ़ाई करता और फिर मोबाइल में गेम्स खेलने लग जाता। पिताजी ने उसे बहुत समझाया, पर वह जैसे का तैसे ही रहा। उसके पिताजी ने ऋषभ के गणित के अध्यापक गुप्ताजी से यह बात कही। गुप्ता सर ने कहा कि वे उसे समझाने का प्रयत्न करेंगे।

एक दिन ऋषभ गणित के कुछ प्रश्न लेकर गुप्ता सर के पास गया। ऋषभ के प्रश्नों का उत्तर देने के बाद गुप्ता सर उसे अपने घर के पीछे वाले बाग में टहलने के लिए ले गए। वहाँ उन्होंने ऋषभ को चार पौधे दिखाए। उनमें एक पौधा एक फुट का था, दूसरा तीन फुट का, तीसरा सात फुट का और चौथा ग्यारह फुट का।

सर ने कहा, 'बेटे, तुम पहले पौधे को उखाड़ दो।' ऋषभ ने बड़ी आसानी से यह काम कर दिया।

अब सर ने कहा, 'इस दूसरे पौधे को उखाड़ो।' ऋषभ ने थोड़ा जोर लगाकर उसे उखाड़ डाला।

सर ने तीसरे सात फुट वाले पौधे को दिखाकर उसे उखाड़ने के लिए कहा। ऋषभ ने पहले दो पौधों को एक हाथ से उखाड़ दिया था। अब तीसरे पौधे को उखाड़ने के लिए उसने दोनो हाथों का उपयोग किया। बड़ी मेहनत के बाद वह इस पौधे को उखाड़ने में सफल रहा। गुप्ता सर ने 'वाह-वाह' कहकर उसकी पीठ थपथपाई और कहा, 'अब चौथे पौधे को भी उखाड़ने का प्रयत्न करो।'

ऋषभ पहले तो ग्यारह फीट वाले इस पौधे को देखकर ही डर गया। सर ने कहा है, इसलिए वह पूरी शक्ति लगाकर उखाड़ने लगा, पर पौधा एक इंच भी नहीं हिला। ऋषभ ने कह दिया, 'सर, इसको उखाड़ना मेरे बस की बात नहीं।'

तब सर ने उसे समझाकर कहा, 'देखो, जब हम किसी बुरी आदत में पड़ते हैं, तो शुरू-शुरू में उसे दूर करना बड़ा आसान होता है, पर जब हम उस आदत को नहीं छोड़ते, तो इस पौधे की जड़ों की तरह वे भी गहरी हो जाती हैं। इन जड़ों को उखाड़ना बहुत कठिन हो जाता है।

ऋषभ को बात समझ में आ गई। वह अच्छी तरह से पढ़ाई में लग गया। ❍❍❍

स्वामी विवेकानन्द के बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ था। उनकी माँ ने उन्हें बचपन में एक उपदेश दिया था, 'आजीवन पवित्र रहो। अपने सम्मान की रक्षा करो और दूसरों को भी सम्मान दो। खूब शान्त रहना, परन्तु आवश्यक होने पर दृढ़ता दिखाने में भी संकोच मत करना।'

माँ के इस उपदेश ने नरेन्द्र के चरित्र-गठन में बड़ी सहायता की। उन्हें अपने बचपन से ही यह बात समझ में आ गई कि अपने स्वाभिमान की रक्षा कैसे की जाए? वे दूसरों के प्रति भी सम्मान दिखाते थे और आवश्यक पड़ने पर कठोरता भी बरतते थे।

एकबार एक व्यक्ति ने नरेन्द्र का बिना कारण अपमान कर दिया। नरेन्द्र को बहुत आश्चर्य हुआ। उनके माता-पिता भी नरेन्द्र को छोटा मानकर ऐसा तुच्छ व्यवहार नहीं करते थे। नरेन्द्र ने तुरन्त उस व्यक्ति से दृढ़ स्वर में कहा, 'आपके समान अनेक लोग हैं, जो सोचते हैं कि आयु कम होने से बुद्धि भी कम हो जाती है, परन्तु ऐसी बात नहीं है।' उन सज्जन ने तुरन्त अपनी भूल स्वीकार कर ली। ❍❍❍

काश हममें भी वैसी संवेदना होती !

प्रिय युवा बन्धुओ !

संवेदना मानवीय जीवन का संचरणशील आधार है। संवेदना से ही मानव में मानवता की झलक मिलती है। संवेदना ही व्यक्ति को मनुष्यत्व से देवत्व और देवत्व से ब्रह्मत्व में प्रतिष्ठित करती है। सम्वेदना ही मानव को एक-दूसरे से जोड़ने, दूसरे में आत्मीयता का बोधकर वेदान्तिक एकत्व की अनुभूति की झलक प्रदान करती है। संवेदना व्यक्ति को स्वार्थ से परमार्थ में, निज से पर में, व्यक्ति से समाज में और व्यष्टि से समष्टि में परिवर्तित करती है। सम्वेदना मानवीय सम्बन्धों का आधार है और परमार्थ पथ में अग्रसर होने का सुगम पथ है।

परसंवेदना से व्यथित होकर ही तो महर्षि वाल्मीकि जी ने महाकाव्य महाग्रन्थ रामायण की रचना की थी। एक बहेलिये ने क्रौंच के जोड़ों में से नर-क्रौंच को तीर से मार डाला। मादा-क्रौंच बैठकर वहाँ विलाप कर रही थी। ऋषि ने जब उस दृश्य को देखा और उसकी आर्तनाद को सुना, तो उनका कोमल हृदय द्रवित हो गया। वे बहुत दुखित हुए। सहसा उनके मुख से निकल गया –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमधीः काममोहितम् ।।

– ऋषि ने कहा, हे निषाद ! तुम कभी भी संसार में सम्मान और कीर्ति नहीं प्राप्त करोगे, क्योंकि तुमने प्रेमरत क्रौंच दम्पती में से एक का वध कर दिया है।

सम्पूर्ण रामायण का मूल प्रेरक आदि स्रोत यह सम्वेदना -श्लोक ही था, जिस भित्ति पर रचित ग्रन्थ ने सम्पूर्ण विश्व में नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सनातन आदर्श को शाश्वत प्रतिष्ठापित किया।

गोस्वामी तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानस में लिखते हैं – **परदुख द्रवहिं सन्त सुपुनीता**। सन्त, सज्जन पुरुष परदुख से द्रवित हो जाते हैं। परदुखकातरता ने ही दुखों से मुक्तिमार्ग का अनुसन्धान किया। परसंवेदना से आत्मीयता-बोध करने के कारण ही समाज उन महान पुरुषों के सान्निध्य में बिताये गये पावन पलों को याद करता है। विपरीत लोगों के साथ मिले कटु अनुभवों की कटुस्मृति से दुखित हो जाता है। तुलसीदासजी लिखते हैं –

मिलत एक दारुण दुख देहीं।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।।

स्वामी विवेकानन्द जी ने भी मानवीय जीवन में सम्वेदना के महत्त्व को दर्शाया है। उन्होंने भारतवासियों के दुख-कष्टों का अनुभव किया और उसे दूर करने का मार्गानुसन्धान किया। मुक्तिपथानुयाइयों के लिये 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' के अभिनव आदर्श को सुस्थापित किया।

क्या हम वर्तमान में समाज में अभावग्रस्त जीवनयापन कर रहे लोगों के प्रति सहानुभूति रखते हैं? क्या हम परसम्वेदना की अनुभूति कर उन असंख्य भारतवासियों की सुख-सुविधा का प्रयत्न करते हैं? यदि ऐसा होता, तो समाज से भ्रष्टाचार, चोरी, रक्तपात, परपीड़न और व्यक्तिगत और सामूहिक विवाद कभी समाप्त हो गये होते। जनता के साथ न्याय करनेवाले और उनकी परेशानियों को बोध करने वाले एक चिकित्सक की घटना मुझे याद आ रही है, जिसका उल्लेख करता हूँ – बिहार के छपरा जिले में डॉ रविशंकर जी के चिकित्सालय में मैं बैठा हुआ था। शाम का समय था। अन्धेरा हो रहा था। डाक्टर साहब के पास रोगियों की बड़ी भीड़ थी। मैंने कहा, डाक्टर साहब आप सबको पहले देख लीजिये, उसके बाद हमलोग बात करते हैं। रोगियों का देखना हो गया। उसके बाद मैंने देखा कि लगभग दस मेडिकल प्रतिनिधि खड़े थे। मैंने कहा, इन लोगों से भी मिल लीजिये। उन्होंने वही किया। उसमें एक मेडिकल प्रतिनिधि की बहुत मँहगी दवा थी। वह बार-बार उसे ही लिखने को कह रहा था। डाक्टर साहब ने बड़ी दृढ़ता से कहा – "देखो, हमारे यहाँ बहुत से गरीब लोग अपना लोटा-थाली बेचकर इलाज कराने आते हैं। मैं उनके साथ अन्याय नहीं करूँगा। जब सस्ती दवा से रोग ठीक हो रहा है, तो हम तुम्हारी इतनी मँहगी दवा क्यों लिखेंगे? अपने कम्पनी को ऐसा लिख दो।"

मैं सुनकर अवाक् रह गया। मैंने सोचा, यदि जनता के प्रति ऐसी संवेदना और सेवावृत्ति सभी विभागों के उच्च पदस्थ और अन्य अधिकारियों की हो जाती, तो यह विश्व स्वर्ग से भी दिव्य बन जाता, जहाँ देवता पहले से आने को तड़पते रहते हैं। ○○○

साधक-जीवन कैसा हो? (१५)

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

आत्मनिरीक्षण कैसे करें? इसके अनेक उपाय हैं। संक्षेप में इस पर चर्चा की जाएगी। पहले हमने बाहर की यात्रा बन्द की है। अब अन्दर जाने का प्रयास कर रहे हैं। उसका एक सफल और निश्चित उपाय है। हमारा जीवन आवश्यकताओं पर निर्भर हो, भोगेच्छाओं पर नहीं। हम कैसे जानेंगे, हमारी बाहर की यात्रा बन्द हुई है या नहीं?

यदि साधना करनी है, तो हमें अपने अन्दर जाना पड़ेगा। मनुष्य एक बार में किसी एक स्थान की ही यात्रा कर सकता है। एक साथ एक ही समय दिल्ली और बेंगलोर की यात्रा नहीं कर सकता। दिल्ली जाना हो, तो बेंगलोर की यात्रा रोकनी पड़ेगी। इसमें क्या आवश्यक है, यह देखना पड़ेगा। आवश्यकता आधारित जीवन और भोगेच्छा आधारित जीवन में अन्तर क्या है? पानी पीने के लिए एक ग्लास की आवश्यकता है। क्योंकि हम सब समय सब जगह चुल्लू में पानी नहीं पी सकते। तब हमें तोतापुरी जैसे समान नागा साधु होकर रहना पड़ेगा। किन्तु यह सबके लिये सम्भव नहीं है। समाज में रहना है, तो कुछ आवश्यक व्यवस्था करनी पड़ेंगी। ग्लास मेरी आवश्यकता है। काँच के ग्लास से भी पानी पीया जा सकता है। फूटने का डर हो, तो स्टील का ग्लास ले सकते हैं। इसी से आवश्यकता की पूर्ति हो जाएगी। किन्तु यदि हम चाँदी या सोने की नक्काशीवाले ग्लास से पानी पीएँ, तो यह भोगेच्छा आधारित जीवन होगा। इस प्रकार विचार करने से हमारी चेतना भोग की ओर नहीं जाएगी। हम साधक जीवन की ओर अग्रसर होंगे।

साधना के इतने आयाम हैं कि आपके सामने क्या रखूँ और क्या न रखूँ, ऐसी स्थिति है। यद्यपि इस विषय में मैं स्वयं अनभिज्ञ हूँ। किन्तु थोड़ा-बहुत मैंने जो सुना है, उसे आपके सामने रख रहा हूँ। बहुत महत्वपूर्ण और आवश्यक विषय है।

साधना में समय बहुत महत्त्वपूर्ण है। हमको साधना के लिए समय चाहिए। ज्योंहि हम आवश्यकता आधारित जीवन जीने का निश्चय करेंगे, त्योंहि हमारे पास व्यर्थ कार्यों से समय बच जायेगा, जो भोग-वासना आधारित जीवन में नष्ट होता था, जो मुझे व्यर्थ नचाता रहता था। अब मैं निश्चिन्त हूँ। इसका अभ्यास कैसे करें? हमें अब भीतर जाना है। छोटी-छोटी बातों का ध्यान देने से साधना आधारित जीवन बनता है।

जैसे मान लीजिए, किसी भक्त ने कहा महाराज, काँच का ग्लास यात्रा में मत ले जाया कीजिए, वह कभी भी फूट जायेगा। स्टील का ग्लास रखा कीजिए। आप बहुत यात्रा करते हैं। काँच का ग्लास फूट जायेगा। तो ठीक है, हमने स्टील का ग्लास रख लिया। अब यदि कोई हमें दूसरा स्टील का ग्लास दे, तो हम उसे नहीं रखेंगे, क्योंकि हमारे पास पहले से ही स्टील का ग्लास है, उसी से हमारा काम चल जाएगा। यदि लोभ में चाँदी की ग्लास रखूँगा, तो उसके साथ मेरा सामान भी चोरी हो जाएगा और दुख होगा। संसार का अर्थ ही है दुख। भले ही दुख के प्रकार अलग हो सकते हैं। इन्हीं दुख-कष्टों में जीवन समाप्त हो जाता है। यदि मेरी चेतना इसे पकड़ ले, तो हममें परिवर्तन होने लगेगा।

योगक्षेम की चिन्ता से साधक को बचना चाहिए। नहीं तो साधना नहीं हो सकती। योग माने जो नहीं है, उसको प्राप्त करने की इच्छा और प्रयत्न और क्षेम माने जो है उसे बचाए रखने का प्रयत्न। ये दोनों ऐसी विधाएँ हैं, जो जीवन में हमें अन्य किसी काम के लिये समय नहीं देतीं। कैसे? मान लीजिए हमारे अनुज स्वामी नित्यस्थानन्द जी नागपुर आये हुए हैं, ये विद्वान हैं, लेखक हैं। वे मुझे एक कलम देना चाहते हैं। मेरे पास पहले से ही एक कलम है। यदि हम साधक की चेतना चाहते हैं, तो हमें प्रेमपूर्वक यह भेंट अस्वीकार करनी चाहिए।

चेतना में परिवर्तन लाने के लिये सहज होना चाहिए। व्यक्ति जब किसी प्रकार के तनाव में आ जाए, तो चेतना में उचित परिवर्तन नहीं होता। चेतना में परिवर्तन सहज सरल अवस्था में ही होता है। चेतना में परिवर्तन के लिए बाहर के संसार को समझने की अवश्यकता नहीं है। ग्लास का प्रयोजन जल-दूध आदि पीने के लिये है। वह अगर स्टील के ग्लास से हो जाता है, तो सोने-चाँदी की ग्लास की आवश्यकता है? मन ने इसे स्वीकार कर लिया। उसके बाद हम मन के व्यर्थ तनाव से बच गए। विलासिता की

व्यर्थता साधक-साधिका को अपने मन में लानी पड़ेगी। संसार सम्पूर्ण व्यर्थ है, यह मैं नहीं कह रहा हूँ। संसार एक सीमा के बाद व्यर्थ है। हमने जो सीमाएँ निर्धारित की हैं उसके बाद वह व्यर्थ है। संसार की व्यर्थता यदि एकबार हमें समझ में आ जाय, तो उसका आकर्षण छूट जायेगा। साधक-साधिका को संसार की व्यर्थता और नश्वरता को समझना चाहिए और उससे बचना चाहिए।

हमारी अन्तर्यात्रा में सांसारिक वस्तुओं का आकर्षण बहुत बाधक है। यदि हम भगवान का भजन करना चाहते हैं, अपने इष्ट का दर्शन करना चाहते हैं, तो हमें भीतर का चिन्तन, आत्मनिरीक्षण करना पड़ेगा। आत्मनिरीक्षण के लिए समय चाहिए। अगर हमारा समय योगक्षेम की चिन्ता में, सजने-धजने में ही लगा रहेगा, तब हम आत्मनिरीक्षण कैसे करेंगे? मैं वास्तव में क्या हूँ, इस विचार से अन्तर्यात्रा प्रारम्भ होती है। सरल शब्दों में अपने गुण-दोषों को देख कर उस पर विचार करने से अन्तर्यात्रा प्रारम्भ होती है – मैं कहाँ हूँ, मैं कौन हूँ, इससे शुरू करें और तब धीरे-धीरे एक दिन हम अपने लक्ष्य तक पहुँच जाएँगे। अन्तर्यात्रा का अभ्यास कैसे करें? सबेरे उठते ही हमको संसार की चिन्ताएँ खींचती रहती हैं। हम यह निश्चय करें कि सुबह उठकर दैनिक क्रिया से निवृत्त होकर सबसे पहला काम आत्मनिरीक्षण करेंगे। उसके बाद ही संसार के दूसरे काम-काज करेंगे।

ये सांसारिक आकर्षण आध्यात्मिक जीवन के शत्रु हैं, यदि हम इन असुर-बाधाओं से नहीं बचेंगे, तो अन्तर्यात्रा कभी नहीं हो सकती।

बहुत से लोगों के मन में साधना के सम्बन्ध में विचित्र धारणाएँ होती हैं। कोई सोचता है खड़े रहकर साधना होगी, कोई सोचता है कि घुटने टेककर बैठने पर ही साधना हो सकती है, कोई सिर के बल खड़े रहने से साधना मानते हैं, किन्तु मैं उसकी चर्चा अभी नहीं करूँगा। किन्तु साधना में मुख्य बात है कि हमारी चेतना कहाँ है।

निश्चित समय पर बैठकर भीतर देखने का प्रयत्न प्रारम्भ करने पर सैकड़ों विचार मन में आयेंगे। ऐसे विचार जिसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज की एक प्रसिद्ध पुस्तक है, 'ध्यान और आध्यात्मिक जीवन'। अपने एक शिष्य के पूछने पर स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज कहते हैं – My boy try to find out your dominant thought – अपने मन में बार-बार उठ रहे उन विचारों को ढूँढ़ने का प्रयत्न करो, उन्हें देखने का प्रयत्न करो, जानने का प्रयत्न करो, जो तुम्हारे मन पर छा गए हैं। इससे अन्तर्यात्रा प्रारम्भ होगी।

जीभ का चटोरापन, सब जगह सम्मान मिलने की महत्त्वाकांक्षा, लोकप्रियता की अभीप्सा को छोड़े बिना अन्तर्यात्रा कभी सफल नहीं होगी। जब तक प्रतिदिन थोड़ी देर के लिये बाहर की यात्रा रोक नहीं दी जाएगी, तब तक अन्तर्यात्रा प्रारम्भ ही नहीं हो सकेगी। उस ओर ध्यान ही नहीं आएगा । यह २-४ दिन, २-४ महीने, २-४ साल की बात नहीं है, हमें यह जीवन पर्यन्त करते रहना पड़ेगा। जैसे जीवित रहने के लिये आहार करना पड़ेगा, उसी प्रकार हम जब तक जीवित रहेंगे, तब तक हमें साधना करनी ही पड़ेगी। कुछ नियमों को भी मानना पड़ेगा।

मान लें हमने जान लिया कि हमें क्रोध बहुत आता है। अब हमें उससे बचना है। साधक के जीवन में इन निश्चयों के साथ एक छोटा संकेत देकर आज की बात समाप्त करूँगा।

बाहर की वृत्ति परिवर्तनशील है, इसे आप देख रहे हैं, अनुभव भी कर रहे हैं। भीतर की वृत्ति भी परिवर्तनशील होती है। कैसे? किसी भी परिवर्तन का आभास एक अपरिवर्तनशील तत्त्व के बिना नहीं हो सकता।

हम रेलगाड़ी में यात्रा करते हैं। रेल पृथ्वी पर, पटरी पर चल रही है। रेल की पटरियाँ नहीं चल रही हैं। यदि रेल की पटरी भी उसी गति से चलने लगे, जिस गति से रेल चल रही है, तो रेल आगे नहीं बढ़ सकती।

संसार में सुख-दुख परिवर्तन से ही होता है। अगर परिवर्तन न हो, तो कोई सुख-दुख नहीं होगा। यह जानकर रखें कि हम सबके भीतर एक अपरिवर्तनीय सत्ता है। उसका नाम कुछ भी क्यों न हो। वह कूटस्थ है, कभी नहीं बदलता है। उसके न बदलने के कारण ही हमें सब परिवर्तनशील वस्तुओं का ज्ञान हो रहा है।

हम बाहर की यात्रा में कहीं नहीं पहुँचेंगे। किन्तु अन्तर्यात्रा प्रारम्भ करेंगे, तो गुरु और प्रभु की कृपा से हम उस कूटस्थ वस्तु में पहुँच जायेंगे, जो अपरिवर्तनशील है।

साधक को अपरिवर्तनशील स्थिति में पहुँचने के लिए क्या उपाय है, क्या आयाम है, इसकी चर्चा बाद में होगी? धन्यवाद ! **(क्रमशः)**

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (३)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन की प्रेरणाप्रद प्रसंगों का सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिग्टंन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monastries' में किया है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

स्वामी विज्ञानानन्दजी के सम्बन्ध में कुछ संस्मरण

रामकृष्ण मिशन टी.बी. सेनेटोरियम आश्रम, राँची के ड्राइवर से मैं वार्तालाप कर रहा था। उसने कहा, "महाराज, मैं बहुत भाग्यशाली हूँ कि ड्राईवर के रूप में मैं रामकृष्ण मिशन के बहुत से महान संन्यासियों के साथ घूमा हूँ। यहाँ तक कि स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज के साथ भी एक बार गाड़ी में गया था।"

मैंने पूछा, "सच में?"

रामजी ने उतर दिया, "हाँ, यह सत्य है। लेकिन कुछ दूर जाने के अनन्तर गाड़ी का इंजन खराब हो गया। मैं कार से नीचे उतर कर इंजन की मरम्मत करने लगा। तब स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज ने मुझसे कहा, "रामजी, यदि तुम्हें कोई परेशानी हो, तो तुम मेरी सहायता ले सकते हो। तुम जानते हो कि पहले मैं इंजिनीयर था।"

मैंने कहा, "महाराज, आप अपने सीट पर बैठे रहकर मुझे आशीर्वाद दीजिए, तभी मैं कार को ठीक करने में सक्षम हो सकूँगा।" सौभाग्य से बहुत जल्दी ही कार ठीक हो गई।

रामजी ने कहना जारी रखा, "मैं वाराणसी में रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम के संन्यासियों के घनिष्ठ सम्बन्ध के साथ बड़ा हुआ। तब मैं छोटा बच्चा था। संन्यासीगण मुझसे बहुत प्रेम करते थे। यहाँ तक कि मैं उनलोगों के साथ वालीबॉल भी खेलता था।

"युवावस्था में मुझे वाराणसी में ड्राइविंग का अनुज्ञापत्र (लाईसेन्स) मिला और मैं ड्राइवर की नौकरी करने लगा। एक बार जब मैं बिहार के सरकारी कार्यालय में ड्राइवर था, तो मुझे इलाहाबाद से पूजनीय शैलेन महाराज का पत्र प्राप्त हुआ। वे इलाहाबाद आश्रम में स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज के सेवक थे। उन्होंने लिखा, "रामजी, इस वर्ष हमलोग अपने आश्रम में दुर्गा पूजा करने जा रहे हैं। यदि तुम आते, तो हमलोगों के लिए बड़ी सहायता हो जाती।"

"मैंने अपने प्रभारी अधिकारी से बातचीत की तथा दुर्गा पूजा के समय कुछ दिन की छुट्टी के लिए प्रार्थना की। उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। मैंने सोचा, पहले मैं वाराणसी जाऊँगा और तत्पश्चात् प्रयाग (इलाहाबाद)। अत: मैंने वाराणसी जाने वाली ट्रेन पकड़ी। जाते समय मार्ग में एक छोटे स्टेशन पर ट्रेन कुछ देर के लिए रुकी। जब मैंने खिड़की से बाहर देखा, तो बगल के तालाब में बहुत से कमल के फूल खिले थे। मैं अविलम्ब ट्रेन से नीचे उतरा और तालाब के पास चला गया। इसी बीच ट्रेन चली गई।

"एक ग्रामीण व्यक्ति तालाब के निकट ही खड़ा था। मैंने उससे अपने लिए कमल के कुछ फूलों को तोड़ने के लिए कहा। पहले तो उसने अनिच्छा दिखाई, लेकिन जब मैंने उसे कुछ रुपये देने के लिए कहा, तो वह अविलम्ब तैयार हो गया। उसने बहुत से फूल तोड़े। उन फूलों को अच्छी तरह बाँधा और रेलवे स्टेशन पर वाराणसी जाने के लिए अगली ट्रेन की प्रतीक्षा करने लगा।

"वाराणसी पहुँचने के बाद मैं सीधा रामकृष्ण अद्वैत आश्रम में गया तथा पूजा के लिए कुछ कमल के फूलों को दिया। उसके बाद मैंने इलाहाबाद जाने के लिए ट्रेन पकड़ी। जब मैं इलाहाबाद रामकृष्ण आश्रम में पहुँचा, तो पूजनीय शैलेन महाराज ने मेरा स्वागत किया। उन कमल के फूलों को देखकर वे काफी आनन्दित हुए। उन्होंने वहाँ से जाकर यह सूचना स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज को दी। जब स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज अपने कमरे से बाहर निकले, तो शैलेन महाराज ने उनको मेरा परिचय देते हुए कहा, 'महाराज, इस नवयुवक का नाम रामजी है। इसने बहुत दूर से दुर्गा पूजा के लिए इन कमल के फूलों को लाया है।'

"स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज फूलों को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। पहले उन्होंने फूलों को देखा, उसके बाद मुझे देखकर कहा, "बहुत सुन्दर ! मैंने अनुभव किया कि जैसे उन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से मेरे भीतर-बाहर देख लिया हो। यही प्रथम बार मैंने उनका दर्शन किया और उनके आध्यात्मिक सान्निध्य से पूर्णरूप से अभिभूत हो गया।"

यद्यपि स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज बहुत गम्भीर स्वभाव के थे, लेकिन इसके साथ-ही-साथ वे विनोदप्रिय भी थे। यह इस संस्मरण से सिद्ध होता है। दीनानाथ[१] नामक

एक नवयुवक मिदनापुर से बेलूड़ मठ आया। वह स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज से दीक्षा लेने के लिए आया था। दीनानाथ अपने उम्र के हिसाब से देखने में बहुत ही छोटा दिखता था।

जब वह पहली बार स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज के दर्शन के लिए गया, तो महाराज ने अपने कमरे में रखे एक बड़े सूटकेस को दिखाते हुए परिहास करते हुए कहा, ''तुम बहुत छोटे हो, मैं तुमको इस सूटकेस में डालूँगा !''

दीनानाथ कहते हैं, ''दीक्षा के दिन, पूर्व निर्देशानुसार मैं स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज के कमरे में गया। मैंने उनको कुर्सी पर बैठे हुए देखा। उसके बाद उन्होंने मुझे मन्त्र प्रदान किया। जब वे मन्त्र का उच्चारण कर रहे थे, तो वे अपनी कुर्सी पर धीरे-धीरे आगे-पीछे झूलने लगे। इस प्रकार उनसे मेरी दीक्षा हुई।''

हमारे संघ के वरिष्ठ संन्यासी देवेन महाराज ने स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज के साथ रामकृष्ण आश्रम, इलाहाबाद में अपनी प्रथम रोचक भेंट के बारे में बताया था। उस समय देवेन महाराज एक युवा संन्यासी थे। विज्ञानानन्द जी महाराज एवं देवेन महाराज दोनों की मातृभाषा बँगला थी। बँगला भाषा में मध्यम पुरुष के सम्बोधन के लिए तीन प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उसमें प्रथम है 'आपनि'। 'आपनि' का प्रयोग बहुत आदरणीय व्यक्ति के लिए किया जाता है। दूसरा प्रयोग है 'तुमि'। समान उम्र के मित्र-सम्बन्धियों के साथ-साथ अपने से छोटे के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। तीसरा हैं 'तूई'। इसका प्रयोग साधारणत: अपने घनिष्ठ एवं सबसे छोटे के लिए किया जाता है। समाज के निम्न स्तर के लोगों के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।

प्रथम भेंट के समय से ही किसी अज्ञात कारण से स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज देवेन महाराज को 'आपनि' कहकर पुकारते थे। इससे देवेन महाराज बहुत ही लज्जित हुए। लेकिन विज्ञानानन्द जी महाराज इतने गम्भीर दिख रहे थे कि देवेन महाराज उनसे 'आपनि' के स्थान पर 'तुमि' का सम्बोधन करने के लिए कहने का साहस नहीं कर सके।

उसके बाद दोपहर के भोजन का समय आया। स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज का शरीर बहुत बड़ा था, इसलिए उनके उपयोग के बर्तन थाली, कटोरा, ग्लास इत्यादि सभी आकार में कुछ बड़े होते थे। देवेन महाराज को उन बड़े आकार के बर्तनों में बहुत अधिक मात्रा में दाल, सब्जी, दूध इत्यादि दिया गया। भोजन परोसने के बाद विज्ञानानन्द जी महाराज ने देवेन महाराज से कहा, 'खाओ'।

लेकिन देवेन महाराज छोटे कद के थे। उन्हें लगा कि परोसा गया भोजन उनके लिए बहुत अधिक है। अत: उन्होंने विज्ञानानन्द जी महाराज से कहा, ''महाराज, यह भोजन बहुत अधिक है, मैं इतना नहीं खा सकता।''

स्वामी विज्ञानानन्द जी ने कहा, ''क्या? तुम अपने बड़ों की आज्ञा का उल्लंघन करना चाहते हो !''

अत: देवेन महाराज पूरा भोजन करने को विवश हो गए।

किसी को आश्चर्य हो सकता है कि क्यों स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज ने देवेन महाराज के साथ वैसा व्यवहार किया। क्या वे सनकी थे? स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने इस प्रश्न का उतर दिया है। एक बार स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने स्वामी विज्ञानानन्दजी के सम्बन्ध में कहा था, ''वह गुप्त ब्रह्मज्ञानी है।'' कुछ कारणों से जिन्हें केवल वे ही जानते थे, स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज अपनी महान आध्यात्मिकता से दूसरों को अवगत कराना नहीं चाहते थे। स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज अपनी आध्यात्मिकता को छिपाने के लिए अनेक छद्मवेश धारण करते, उनका रहस्यमय व्यवहार उनमें से एक था। ○○○

१. दीनानाथ (परवर्ती काल में उन्होंने रामकृष्ण संघ में प्रवेश लिया और ब्रह्मचारी मेधाचैतन्य के नाम से प्रसिद्ध हुए।)

मनुष्य पहले स्वयं को दोषी बनाता है, तभी दूसरों में दोष देखता है। दूसरों में दोष देखने से भला उसका क्या होगा? स्वयं की ही हानि होगी। मेरा बचपन से ही यह स्वभाव रहा है कि मैं किसी के दोष नहीं देख सकती। यदि मेरे लिए कोई थोड़ा भी कुछ करता है तो मैं उसे उसी के माध्यम से स्मरण रखने का प्रयत्न करती हूँ। फिर मनुष्य के दोष देखना? वह मैंने नहीं सीखा। क्षमा ही तपस्या है।

– श्रीमाँ सारदा देवी

प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका

श्रीशंकराचार्य

काहर्निशमनुचिन्त्या संसारासारता न तु प्रमदा ।
का प्रेयसी विधेया करुणा दीनेषु सज्जने मैत्री ।।१६।।

प्र. दिनरात (सदैव) चिन्तन करने योग्य क्या है?

उ. संसार की भोग्य-वस्तुओं का चिन्तन करने के बजाय उसकी असारता का चिन्तन करना चाहिए ।

प्र. ग्रहण करने योग्य प्रिय वस्तु क्या है?

उ. दीन-दु:खियों पर करुणा और सज्जन महापुरुषों के साथ मित्रता ।

कण्ठगतैरप्यसुभिः कस्य ह्यात्मा न शक्यते जेतुम् ।
मूर्खस्य शङ्कितस्य च विषादिनो वा कृतघ्नस्य ।।१७।।

प्र. मरते समय तक भी किसके मन का जय सम्भव नहीं होता अर्थात् किनका मन सन्मार्ग पर नहीं आता?

उ. मूर्ख, संशयग्रस्त, विषादी और कृतघ्न व्यक्तियों का मन मरते समय तक भी होश में नहीं आता ।

कः साधुः सद्वृत्तः कमधममाचक्षते त्वसद्वृत्तम् ।
केन जितं जगदेतत् सत्यतितिक्षावता पुंसा ।।१८।।

प्र. साधु कौन है?

उ. जो सच्चरित्र है, वही साधु है ।

प्र. अधम किसे कहते हैं?

उ. दुराचारी व्यक्ति ही अधम व्यक्ति है ।

प्र. इस जगत को किसने जीता है?

उ. सत्य और सहनशील पुरुष ने इस संसार को जीता है ।

कस्मै नमांसि देवाः कुर्वन्ति दयाप्रधानाय ।
कस्मादुद्वेगः स्यात् संसारारण्यतः सुधियः ।।१९।।

प्र. देवता लोग भी किसे नमस्कार करते हैं ?

उ. जिसके हृदय में दया की प्रधानता होती है, उसे देवता लोग भी नमस्कार करते हैं ।

प्र. बुद्धिमान (विवेकी) को किससे उद्वेग होता है ?

उ. उसे संसार रूपी अरण्य से भय होता है ।

कस्य वशे प्राणिगणः सत्यप्रियभाषिणो विनीतस्य ।
क्व स्थातव्यं नयाय्ये पथि दृष्टादृष्टलाभाढ्ये ।।२०।।

प्र. समस्त प्राणी किसके वश में रहते हैं?

उ. जो सत्य और प्रिय बोलता है तथा विनयशील है, उसके वश में समस्त प्राणी रहते हैं ।

प्र. किस पथ पर रहना चाहिए?

उ. लोक और परलोक के लाभ से युक्त तथा धर्म के पथ पर रहना चाहिए ।

कोऽन्धो योऽकार्यरतः को बधिरो यो हितानि न श्रृणोति ।
को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति ।।२१।।

प्र. अन्धा कौन है?

उ. जो अनुचित कार्यों में व्यस्त रहता है ।

प्र. बहरा कौन है?

उ. जो हितकर वचनों को नहीं सुनता है ।

प्र. गूँगा कौन है?

उ. जो समय पर प्रिय बोलना नहीं जानता है ।

किं दानमनाकांक्षं किं मित्रं यो निवारयति पापात् ।
कोऽलंकारः शीलं किं वाचां मण्डनं सत्यम् ।।२२।।

प्र. दान क्या है?

उ. जो प्रत्युपकार की इच्छा से दिया गया हो ।

प्र. मित्र कौन है?

उ. जो पाप करने से रोके, वही मित्र है ।

प्र. आभूषण क्या है?

उ. शील (सरल निष्कपट स्वभाव) ही आभूषण है ।

प्र. वाणी का भूषण क्या है?

उ. सत्य ही वाणी का भूषण है ।

विद्युद्विलसितचपलं किं दुर्जनसंगतिर्युवतयश्च ।
कुलशीलनिष्प्रकम्पाः के कलिकालेऽपि सज्जना एव ।।२३।।

प्र. बिजली के समान चंचल क्या है?

उ. दुष्ट व्यक्ति और और युवतियों की संगति ।

प्र. कलियुग में भी कुल और शील से अचल कौन हैं?

उ. सज्जन व्यक्ति कलियुग में भी दृढ़ रहते हैं ।

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

२८०. जो रहीम दीनहि लखे, दीनबन्धु सो होय

एक बार एक गरीब बूढ़े ब्राह्मण ने सोचा कि राजा भोज बड़े दयालु हैं, इसलिये वे उसकी मदद अवश्य करेंगे। उसने उनसे मिलने का निश्चय किया। किन्तु राजा के पास खाली हाथ जाना उचित नहीं। यह तो भिक्षुक वृत्ति हुई। यह सोचकर उसने गन्नों के टुकड़ों की एक गठरी बनाई और धारा नगरी जा पहुँचा। द्वारपाल से जब उसने राजा से मिलने की बात बताई, तो द्वारपाल ने पूछा "इस गठरी में क्या है?" "गन्ने के टुकड़े हैं" बताने पर द्वारपाल ने गठरी को अन्दर ले जाकर उसे खोला। जब उसने गन्ने के टुकड़ों को देखा, तो अन्दर पड़े लकड़ी के टुकड़ों को गठरी में डालकर गन्ने के टुकड़े अपनी जेब में भर दिये। कालिदास दूर से यह देख रहे थे। उन्होंने एक कागज में कुछ लिखा और राजा से मिलने जा रहे ब्राह्मण की गठरी में वह कागज का टुकड़ा डाल दिया।

राजा भोज ने ब्राह्मण द्वारा दी गई गठरी को थोड़ा खोला, तो लकड़ी के टुकड़े दिखाई दिये। उन्हें आश्चर्य हुआ। कालिदास ने राजा से गठरी को पूरी तरह से खोलने को कहा। गठरी को खोलने पर उन्हें कागज के एक टुकड़े पर कुछ लिखा दिखाई दिया। उन्होंने पढ़ना शुरू किया, तो उसमें यह श्लोक लिखा था –

दग्धं खाण्डवाऽर्जुनेन हि वृथा कल्पद्रुमैर्विभूषितः
दग्धा वायुसुवेन हेमनगरी लंकापुरी स्वर्णभूः ।
दग्धो लोकसुखो हरेण मदनोऽयुक्तं न तेन कृतम्
दारिद्र्यं जनतापकारकमिदं केनापि दग्धं न हि ।।

– अर्जुन ने कल्पवृक्ष सहित पूरा खाण्डव वन जला दिया, पवनसुत ने सोने की लंका दग्ध की, लोकसुख के लिए शिवजी ने कामदेव को जला दिया, लेकिन लोगों को संतप्त करने वाली दरिद्रता को कोई भी जला नहीं सका।

इसका तात्पर्य यह था कि लकड़ी रूपी दरिद्रता को मैं आपके पास इस उद्देश्य से लाया हूँ कि आप अपनी उदारता की शक्ति से इसे जलाकर नष्ट कर देंगे।

इस श्लोक ने दयालु राजा भोज को व्यथित कर दिया। उनका हृदय इस बात से द्रवित हो गया कि दरिद्रता रूपी अग्नि कितनी तापदायक होती है। वे जब इस पर गम्भीरता से सोचने लगे, तो उनके ध्यान में आया कि आग के पास रखने पर गीली लकड़ी थोड़ी देर बाद सूख जाती है। उसमें पुनः प्रज्वलन शक्ति आ जाती है। दरिद्रता भी गीली लकड़ी सदृश है, जिसकी आर्द्रता को धनरूपी अग्नि से दूर किया जा सकता है।

उन्होंने ब्राह्मण को ससम्मान धनराशि देकर विदा किया।

मनुष्य को जीवन में सुख के साथ दुख भी भोगना पड़ता हैं। यदि दरिद्रता का सामना करना पड़े, तो उसे यह जीवन दुसह्य हो जाता है। सहृदय व्यक्ति का हृदय दीन-दुखियों का दुख देखकर द्रवित हो जाता है और वह उनके दुख को हल्का करने का प्रयास करता है।

२८१. काम-क्रोध की अगिनि को सह सकै न कोय

ज्येष्ठ मास की भीषण गर्मी असह्य होने के कारण सभी प्राणी त्रस्त थे। किन्तु गौतम बुद्ध के लिये सभी ऋतुएँ समान थीं। एकदिन वे आचार्य मंजुश्री और शिष्यों के साथ भिक्षाटन के लिये निकले। दोपहर होने पर सभी एक आम्रवृक्ष के नीचे बैठ गए। देह की शिथिलता कम होने पर तथागत ने शिष्यों से प्रश्न किया, "भिक्खुओं ! प्रचण्ड तापवाली सूर्य की किरणें तुम्हें अप्राकृत नहीं लगतीं?" 'हाँ लगती हैं' उत्तर मिलने पर उन्होंने इसका कारण पूछा। किसी ने भी उत्तर नहीं दिया, तब आचार्य मंजुश्री ने कहा – "भगवन्, प्रकृति अपनी दिनचर्या से विमुख कैसे हो सकती है? वह तो अपने स्वाभाविक गुणधर्मों का पालन कर रही है। अतः उसके कार्य अप्राकृत कैसे हुए।"

बुद्धदेव ने कहा, "भिक्खुओं ! आचार्यश्री का कथन ठीक ही है। यद्यपि आग की लपटों की-सी उग्र लहरें तुम सबको त्रस्त कर रही हैं, तथापि तुम्हारा ध्यान दूसरी अग्नियों की ओर नहीं जाता। तुम ध्यान से देखने का प्रयास करोगे, तो तुम्हें दिखाई देंगी – कहीं क्रोधाग्नि, कहीं ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि, कहीं लोभाग्नि, कहीं मोहाग्नि, कहीं कामाग्नि, तो कहीं हिंसाग्नि मनुष्य को दुर्बल किये हुए है और ये सूर्य-किरणों की उष्मा से कहीं अधिक भयंकर हैं। इनसे बचने का उपाय है – तुम्हें अपने आचरण में सत्य, दया, उदारता, परोपकार, अहिंसा, बन्धुत्व आदि को स्थान देना होगा।"

काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से बचने के लिये मनुष्य को अपना आचरण और चरित्र शुद्ध रखना होगा। इससे उसे दोनों लोकों में, सुख-शान्ति प्राप्त होगी। ○○○

भारत की ऋषि परम्परा

स्वामी सत्यमयानन्द

(भारत वर्ष के प्राचीन ऋषियों का सरल, सरस और सारगर्भित विवरण स्वामी सत्यमयानन्द जी महाराज, सचिव रामकृष्ण मिशन, कानपुर ने अपनी पुस्तक 'Ancient Sages' में किया है। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। – सं.)

अंगिरा

महाभारत में वर्णन आता है कि एकबार देवराज इन्द्र ने प्रायश्चित्त करने के लिए स्वयं को राज्य-निर्वासित कर दिया। जब वे प्रायश्चित समाप्त कर अपने राज्य पहुँचे, तब अंगिरा ऋषि ने हिन्दुओं के पवित्रतम चार वेदों में से एक अथर्ववेद का पाठ कर उनका सत्कार किया। देवराज इन्द्र इससे प्रसन्न हुए और उन्होंने घोषणा की कि अब से ऋषि अंगिरा अथर्वांगिरस नाम से सम्मानित होंगे। अथर्ववेद के पाँच खण्डों में एक का नाम अंगिरसकल्प है।

अथर्वांगिरस नाम महर्षि अथर्वण और अंगिरा के वंशज अथवा केवल अंगिरा वंश के लिए ही आता है। इनके वंशज को अथर्ववेद से सम्बन्धित यज्ञ-रक्षा का कार्य दिया जाता है। ऋग्वेद में अथर्वण नाम एक ऋत्विज का है, जिन्होंने अग्नि को समुत्पन्न किया और पुराकाल में आहुतियाँ प्रदान कीं। अंगिरा ऋषि ब्रह्मा के मानस-पुत्र कहे जाते हैं और उन्हें ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

अथर्ववेद की मुण्डकोपनिषद में वर्णन आता है कि महर्षि अंगिरा के पास शौनक ऋषि शिष्य के रूप में गए। उन्होंने एक प्रश्न किया, जो सभी दार्शनिक जिज्ञासाओं में सर्वोच्च माना जाता है, 'किस वस्तु के जान लेने पर यह सब कुछ जाना हुआ हो जाता है?' मानवीय मन में इस प्रश्न के विलक्षण उत्तर की जो धारणा निर्माण हो सकती है, वही इस भव्य, उत्कृष्ट और काव्यमय उपनिषद का विषय है। बहुत्व में एकत्व के जिज्ञासा की यह प्रक्रिया भारतीय दर्शन की विशेषता है। अंगिरा ऋषि विभिन्न पहलुओं और विचारों द्वारा ब्रह्म ज्ञान का सुन्दर रीति से निरूपण करते हैं।

अंगिरा ऋषि ब्रह्मा के मन से उत्पन्न हुए थे और उनका मनोबल भी तदनुरूप था। अपनी युवावस्था मे उन्होंने इतनी घोर तपस्या की कि उनके तेज की तुलना में अग्नि देवता का तेज और प्रभाव न्यून हो गया। अंगिरा ऋषि को एक नवीन अग्नि के रूप में माना जाने लगा। इससे अग्नि देव इतने निराश हो गए कि उन्होंने स्वयं को छिपा लिया और समस्त संसार को अपनी दाहिका शक्ति अथवा अग्नि से हीन कर दिया। अंगिरा ऋषि ने उन्हें ढूँढ़ निकाला और उनसे आग्रह किया कि वे सृष्टि-व्यवस्था में पुनः अपना समुचित स्थान ग्रहण करें। अग्नि को और भी शान्त करने के लिए उन्होंने स्वयं को उनके पुत्र के रूप में स्वीकार किया। कुछ विद्वान अंगिरा ऋषि को काष्ठ से अग्नि उत्पन्न करने की कला का प्रणेता मानते हैं, इसलिए इस रूपक-कथा का वर्णन किया जाता है।

पुराणों में स्मृति, श्रद्धा, स्वधा और सती को अंगरिस की सहधर्मियों के रूप में बताया गया है। उनके पुत्रों में मुख्य रूप से बृहस्पति और उतथ्य थे। उनके अनेकों पुत्र थे, इनमें से कुछ का नाम 'बृहत्' शब्द से आरम्भ होता था और पुत्रियों के नाम के अन्त में 'मति' शब्द होता था। पौराणिक दृष्टि से उनके पुत्र पितरगण हुए और पुत्रियाँ ऋचा अथवा ऋक् हुईं, जिनका जन्म स्मृति और श्रद्धा से हुआ।

अंगिरा ऋषि के पुत्र सुधन्वा और असुर विरोचन एक सुन्दर स्त्री पर मोहित होकर एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी बन गए। दोनों विरोचन के पिता प्रह्लाद के पास गए। उन्होंने प्रह्लाद से मध्यस्थता करने के लिए कहा कि उस स्त्री के लिए दोनों में से कौन श्रेष्ठ होगा? सुधन्वा को शंका हुई कि प्रह्लाद अपने पुत्र का पक्षपात करेंगे, इसलिए उन्होंने प्रह्लाद को चेतावनी दी, 'आप मिथ्या वाक्य नहीं कहेंगे और सत्य बोलने से विचलित नहीं होंगे। यदि आप इसमें असफल होते हैं तो आपके सिर के सौ टुकड़े हो जाएँगे।'

प्रह्लाद असमंजस में पड़ गए और महर्षि कश्यप के पास परामर्श के लिए गए। महर्षि ने कहा, 'जो कोई सत्य बोलने से विचलित होगा और मिथ्या वाक्य कहेगा, वह मृत्यु के सौ पाशों में बद्ध हो जाएगा। उसके लिए स्वर्ग के द्वार तब तक बन्द रहेंगे जब तक वह इसके प्रायश्चित्त हेतु अनेकों कर्म न कर ले।'

प्रह्लाद वापस आए और विरोचन से कहा, 'सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठतर है। उसके पिता अंगिरा ऋषि मुझसे श्रेष्ठ हैं और सुधन्वा की माता तुम्हारी माता से अधिक महान हैं।'

महाभारत में वर्णन आता है कि पहले केवल चार ही गोत्र हुए – अंगिरा, कश्यप, वशिष्ठ और भृगु। इससे ऋषि

अंगिरस की महानता परिलक्षित होती है। वे देवताओं के ऋत्विज, यज्ञाचार्य, महान न्याय-कर्ता, ज्योतिष-शास्त्र के लेखक, भक्ति और योग के गुरु थे।

महर्षि अंगिरा का व्यक्तित्व विभिन्न सामयिक परिस्थितियों में एक निर्भीक परिव्राजक के रूप में प्राप्त होता है। उन्होंने भीष्म को उपवास और उसके द्वारा प्राप्त पुण्य पर उपदेश दिए ; कुरुक्षेत्र-युद्ध के समय द्रोणाचार्य द्वारा ब्रह्मास्त्र का उपयोग करने पर उनकी भर्त्सना की ; जब ध्रुव भगवान विष्णु की कृपा-प्राप्ति के लिए तपस्यारत थे, तब उनको आर्शीवाद दिया।

जल के देवता वरुण ने एकबार ऋषि अंगिरा को क्रोधित किया। उन्होंने बाद में इसका इस प्रकार वर्णन किया, 'पुराकाल में ब्राह्मण किसी भी लोक के लिए अजेय हो गए थे। ऋषि अंगिरा ने समस्त पृथ्वी का जल दूध के समान पी लिया। उनकी पिपासा फिर भी शान्त नहीं हुई। उन्होंने नवीन जल-प्रपात उत्पन्न किए और उनको भी पीकर शुष्क कर दिया। तब भी उनकी पिपासा का शमन नहीं हुआ। तदनन्तर वे समुद्र को पुनः जलपूर्ण करने लगे, इससे भयंकर बाढ़ की स्थिति निर्माण हो गई। मैं भागकर अग्निहोत्र की अग्नि में छिप गया। अग्नि ने मुझे छिपाकर रखा, इसलिए अंगिरस ने उसे शाप दिया और तब से अग्नि से धूम निकलने लगा।'

राजा चित्रकेतु पुत्रहीन थे, उनकी अनेक रानियाँ थीं। एक महान ऋषि के आशीर्वाद से उन्हें एक रानी से पुत्र हुआ, दोनों को पुत्र के ऊपर गर्व था। इससे अन्य रानियों में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। जैसे-जैसे राजकुमार बड़े होते गए, अन्य रानियों ने षड़यन्त्र रचा और उसे विष पिला कर मार दिया । राजा अत्यन्त शोकाकुल हो गए। ऋषि अंगिरा ने मृत पुत्र के माता-पिता को सान्त्वना दी। उन्होंने मृत बालक की आत्मा को संबोधन कर उसे पुनः शरीर में प्रवेश करने के लिए कहा। बालक की आत्मा ने अपने माता-पिता से कहा, 'मैं कौन-सा शरीर ग्रहण करूँ? इसके पूर्व भी मैंने अनेक शरीर ग्रहण किए हैं। कौन मेरे पिता और कौन मेरी माता है? मेरा जन्म भी नहीं हुआ और मेरी मृत्यु भी नहीं है। आत्मा अपने कर्म-बन्धन के कारण अनेक शरीर ग्रहण करती है और उसे संसार के सुख-दुख भोगने पड़ते हैं। मैं निर्विकार, शाश्वत, शुद्ध, नित्य-बुद्ध आत्मा हूँ, इसका मुझे ज्ञान हो गया है।'

ऐसा कहके वह अदृश्य हो गया। चित्रकेतु के मन से भी अज्ञान का आवरण छिन्न हो गया। तदनन्तर ऋषि अंगिरा ने कहा, 'जीवन में सब कुछ स्वप्न की भाँति क्षणभंगुर है। द्वन्द्वात्मक रूपी इस जीवन में मिथ्या अभिमान का त्याग करो। नित्य-अनित्य वस्तु का विवेक करो और सत्य का साक्षात्कार कर शान्ति प्राप्त करो।'

क्रतु

वेदों की विशाल ज्ञान राशि में अनेक रहस्यमय मन्त्रों का वर्णन है। ये मन्त्र यज्ञ-अग्नि के मध्य में स्थित सर्वोच्च ईश्वरीय सत्ता का वर्णन करते हैं। सप्तऋषि अग्नि के चारों ओर बैठकर एकाग्रचित्त होकर उस सर्वोच्च अग्नि में आहुतियाँ प्रदान करते हैं। इस प्रकार यज्ञ के द्वारा वे दूसरों के पापों का नाश करते हैं और समस्त विश्व को पवित्र करते हैं। क्रतु का शाब्दिक अर्थ वैदिक यज्ञ है, जिसमें पवित्र-अग्नि में आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं। इस प्रकार महर्षि क्रतु का यह नाम विलक्षण सांकेतिक है, जो उनके प्रति सबकी आदर भावना और प्रभाव व्यक्त करता है।

महर्षि क्रतु सप्तऋषियों में से एक थे। ब्रह्मा जब नवीन कल्प में सृष्टि के लिए तप कर रहे थे, तब क्रतु उनके मन से उत्पन्न हुए। कहीं-कहीं ब्रह्मा की बायीं आँख से भी इनकी उत्पत्ति कही गई है। ये सभी मानसपुत्र-ऋषि ही सृष्टि-विस्तार हेतु प्रथम प्रजापति हुए।

दक्ष प्रजापति की पुत्री सन्नति और (कर्दम प्रजापति की पत्नी देवहूति के गर्भ से उत्पन्न) क्रिया, महर्षि क्रतु की पत्नियाँ थीं। उनके साठ हजार बालखिल्य नाम के पुत्र थे। पौराणिक दृष्टि से इनका आकार अंगूठे के समान था और ये नदी तट पर निवास करते थे। एकबार देवराज इन्द्र ने बालखिल्य लोगों का अपमान कर दिया। इससे क्षुब्ध होकर उन्होंने भगवान शिव की स्तुति की। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान शिव ने कहा, 'तुम लोग अपने तप के द्वारा एक पक्षी की उत्पत्ति करोगे, जो इन्द्र के अमृत का हरण कर लेगा।' बालखिल्य गण सूर्य देवता के उपासक थे और कहीं-कहीं उन्हें उनके नित्य सहचर के रूप में उपासना करते हुए भी दिखाया जाता है।

पौराणिक कथाओं में महर्षि क्रतु का यत्र-तत्र वर्णन प्राप्त होता है। ब्रह्मा और इन्द्र की सभाओं में इनका प्रमुख स्थान था। **(क्रमशः)**

गुरु के चरणो में भगिनी निवेदिता

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में उनके जीवन और सन्देश से सम्बन्धित यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठको के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

भगिनी निवेदिता का पूर्व नाम मार्गरेट नोबेल था। उनके पिता एक प्रसिद्ध ईसाई धर्मप्रचारक थे। बहुत-से लोग और पादरी उनसे परामर्श लेने आते थे। निवेदिता अपने माता-पिता की लाड़ली पुत्री थी। वे निवेदिता को गिरजाघर की प्रार्थना, गरीबों की सेवा-कार्य आदि में हमेशा साथ ले जाते थे। धार्मिक संस्कार उन्हें अपने माता-पिता से ही प्राप्त हुए थे। जब वे छोटी थीं तब उनके पिता का देहान्त हो गया। सत्यनिष्ठा, उदारता, भक्ति-भाव, देशभक्ति और लक्ष्य के प्रति निष्ठा के सुसंस्कार निवेदिता को पिताजी से मिले थे। पितृस्नेह से वंचित मार्गरेट अब अपने माता, भाई और छोटी बहन के साथ रह रही था। पारिवारिक परिवेश राष्ट्रभक्ति और स्वाधीनता से परिपूर्ण था। यही स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीयता के संस्कार उनके भावी जीवन में दिखाई पड़ते हैं।

निवेदिता की शिक्षा लन्दन के एक गिरजाघर के आवासीय विद्यालय में कठोर अनुशासन में हुई। वहाँ का वातावरण धार्मिक था। उन्होंने कुछ ही समय में साहित्य, कला, दर्शनशास्त्र, विज्ञान, संगीत आदि विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त कर ली। पिता की मृत्यु के कारण परिवार के भरण-पोषण का दायित्व उन्हीं के कन्धों पर आ गया था। अध्ययन-अध्यापन में रुचि होने के कारण उन्होंने वही व्यवसाय चुना। स्कूल की शिक्षा समाप्त कर केवल सत्रह वर्ष की आयु में सन् १८८६ में निवेदिता शिक्षिका बन गईं। कुछ दिनों में ही विम्बलडन में एक विद्यालय खोलकर उन्होंने अपनी पद्धति से (खेल-खेल में शिक्षा) शिक्षा देना आरम्भ किया। रस्किन स्कूल के द्वारा उन्मुक्त आनन्दमय वातावरण में बच्चों की कोमल भावनाओं को ध्यान में रखकर उन्हें विकसित किया गया था। शीघ्र ही वे एक अच्छी शिक्षिका के रूप में प्रसिद्ध हो गईं। इसके साथ वे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे भी लिखती थीं। यही आदत उन्हें महान भावी कार्य के लिए तैयार कर रही थी। फ्री आयरलैण्ड सम्प्रदाय के द्वारा उनका परिचय रूस के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी प्रिन्स क्रोपाटकिन से हुआ। उन दिनों उनकी छोटी बहन मेरी अध्यापिका थी। उनका छोटा भाई रिचमण्ड भी अध्ययन कर रहा था।

निवेदिता गिरजाघर में नित्य सेवा करती थीं। वे अपने शिक्षण कार्य में सफल थीं, किन्तु गिरजाघर के परिवेश में भी उन्हें शान्ति नहीं मिली। उन्होंने विभिन्न धर्मग्रन्थों को पढ़कर जीवन के सच्चे मार्ग को खोजने की चेष्टा की, किन्तु उन्हें शान्ति नही मिली। वे निराश हो गईं। गिरजाघर में भेदभाव से निवेदिता के मन में प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने इसके विरुद्ध समाचारपत्रों मे लिखा। दीन-दुखियों की सेवा में भेदभाव उन्हें पसन्द नही था। अन्य मतों के लोगों की सेवा न करना, मानव-मानव में यह भेद क्यों? धर्म में यह संकीर्णता क्यों? इसीलिये ईसाई धर्म में उनकी श्रद्धा विचलित हो गयी। गिरजाघरों में अन्य मतों के प्रति सद्भावना के बदले उन्हें नीरस धर्मचर्चा दिखती थी। उनके मन में प्रश्न उठता – क्या धर्म और सत्य भिन्न हैं?

उनका जिज्ञासु मन उन्हें शान्ति से बैठने नहीं दे रहा था। वे एक ऐसे सार्वभौमिक धर्म की खोज में थीं, जो सभी धर्मों का सम्मान करे और जाति, देश और धर्म के भेद से ऊपर उठकर विश्वबन्धुत्व भाव से मानव की सेवा करे।

सत्य की खोज आरम्भ हुई। वे व्यग्र हो गिरजाघरों में घण्टों बितातीं, पर उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी। उनकी ईसाई धर्म में अनास्था हो गई थी। बाद मे एक व्याख्यान में उन्होंने कहा था, "मेरा जन्म और लालन-पालन एक अँग्रेज-कुल में हुआ। शिक्षा भी अठारहवें वर्ष तक अँग्रेजी बालिका के समान ही हुई। बचपन से ही मुझ पर ईसाई धर्म का संस्कार था। मै सभी धर्मों की शिक्षाओं का आदर करती थी। ईसामसीह की निष्ठापूर्वक पूजा करती, क्योंकि मानवजाति के उद्धार के लिए उन्होंने सूली पर चढ़कर बलिदान दिया था। किन्तु अठारहवें वर्ष के बाद ईसाई धर्म के सिद्धान्तों में मेरे मन में शंका होने लगी। उनमें बहुत से तथ्य सत्य के विरोधाभासी लगने लगे। मेरा सन्देह बढ़ता गया और उसमें मेरी श्रद्धा कम हो गयी। मैं सात वर्षों तक लक्ष्यहीन रही, किन्तु मेरा सत्यानुसन्धान जारी रहा। मैंने गिरजाघर जाना छोड़ दिया। कभी-कभी मानसिक शान्ति-प्राप्ति की इच्छा मुझे वहाँ जाने को प्रेरित करती। मैं पहले

की भाँति वहाँ की पूजा-प्रार्थनाओं में अपने को मग्न कर देती। किन्तु हाय ! मेरे सत्यान्वेषण के प्रयास विफल हुए। मेरी व्याकुल आत्मा को मानसिक शान्ति न मिल सकी।''

स्वामी विवेकानन्द के साथ घनिष्ठता

स्वामी विवेकानन्द के साथ पहली भेंट से ही निवेदिता प्रभावित थीं। बार-बार स्वामीजी की वाणी सुनने के बाद उन्हें विश्वास हो गया कि जिस सत्य की खोज मे वे इतने दिनों तक दिग्भ्रमित रहीं, उसका सही निर्देशन इस भारतीय हिन्दू संन्यासी से मिलेगा, ये संन्यासी सर्वसमर्थ हैं। वे एक-के-बाद एक प्रश्न पूछकर अपना सब संशय दूर करना चाहतीं थीं। एक दिन स्वामीजी से उन्होंने सुना था, ''वह परमात्मा अनन्त, असीम और शाश्वत है। उस एक को छोड़कर संसार के सारी वस्तुएँ नाशवान, अस्थायी और दुखमय हैं। इसे भारतीय अच्छी तरह से समझते हैं और सांसारिक सुख-भोग को त्याग कर परमानन्द की खोज में लग जाते हैं। इसीलिये उनका हृदय इन उदात्त विचारों से उन्नत हो जाता है और वे सभी जीवों में परब्रह्म का दर्शन करते हैं। हिन्दुओं का यह विश्वास है कि मन और शरीर दोनों ही आत्मा से संचालित होते हैं। मनुष्य को प्रकृति का दास नहीं बनना चाहिए।'' स्वामीजी द्वारा प्रतिपादित वेदान्त का सिद्धान्त है – आत्मा प्रकृति के लिए नहीं, बल्कि प्रकृति आत्मा के लिए है।

निवेदिता भावुकता में किसी भी विचार को स्वीकार नहीं करती थी। उनके 'किन्तु', 'परन्तु' अर्थात् प्रश्न अब धीरे-धीरे कम होते जा रहे थे। उन्हें निराशा के अन्धकार में अब प्रकाश की आशा-किरण दिखाई दे रही थी। स्वामीजी पर उनका विश्वास प्रतिदिन दृढ़तर होता गया। उन्होंने देखा कि इस संन्यासी की करनी और कथनी मे कोई भेद नहीं है। यह धर्म का वैज्ञानिक आधार है। स्वामीजी से मिलकर निवेदिता की अशान्ति दूर हो गयी, किन्तु भारत देश और भारतवासियों के दर्शन करने की उनमें तीव्र लालसा जागी। क्योंकि स्वामीजी इसी देश से पधारे थे और उनसे निवेदिता को जीवन में नई दिशा मिली थी।

स्वामीजी ने कहा था कि वे कोई नया संप्रदाय आरम्भ करने वहाँ नही गये थे। उन्होंने अपने गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव से जो ज्ञान पाया था, उसे सम्पूर्ण संसार को बताना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। उनका मत था कि वेदान्त के उदार ज्ञान को सभी धर्म-संप्रदाय अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए ग्रहण कर सकते हैं।

धीरे-धीरे निवेदिता की श्रद्धा स्वामीजी पर बढ़ने लगी। इसीलिए वे स्वामीजी की प्रत्येक बात को स्वीकार कर लेती थीं। स्वामीजी के प्रत्येक शब्द को प्रमाण मानती थी। एक दिन स्वामीजी ने उनसे कहा था, ''मैंने भी अपने गुरुदेव के विचारों को जानने-समझने के लिए छह वर्षों तक संघर्ष किया, उनसे तर्क किया, उनसे कई प्रश्न पूछे, तब मुझे अपने साधना मार्ग के प्रत्येक सोपान का ज्ञान हो सका।''

अब निवेदिता स्वामीजी को गुरु कहती थीं। स्वामीजी लन्दन से वापस आ रहे थे। इस प्रसंग का वर्णन करते हुए निवेदिता लिखती हैं, ''मैंने स्वामीजी में आसाधारण नेतृत्व गुण और उनके अद्भुत देशप्रेम को देखकर उनकी सेवा करने की इच्छा व्यक्त की। उनके व्यक्तित्व और चरित्र के सामने मै नतमस्तक हो गई।

वे धर्मतत्त्व की कोई पद्धति बताते, पर जब उन्हें लगता कि यह विचार ठीक नहीं है, तो वे तुरन्त उसे त्याग देते। उनकी इसी महानता से मैंने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। मैंने अपनी बुद्धि से पूर्ण समझने के बाद उनके उपदेशों का यथार्थ रूप से पालन किया। साधना करते-करते मेरी उन पर श्रद्धा दृढ़ हो गयी। उनके सान्निध्य में आने के बाद ही एक असाधारण बुद्धिमान व्यक्ति और स्वामीजी इन दोनों में क्या अन्तर है, मै स्पष्ट रूप से समझ सकी।''

निवेदिता ने आगे लिखा था, ''कल्पना करो, यदि स्वामीजी लंदन नहीं आये हुए होते, तो क्या होता? मेरा जीवन व्यर्थ हो जाता, मै घोर निराशा के अन्धकार में डूबी रहती। स्वामीजी की वाणी तृषार्त लोगों के लिए जीवनप्रद जल के समान थी।

स्वामीजी का निवेदिता पर अद्भुत प्रभाव पड़ा। स्वामीजी और उनके दैवी कार्य पर उनका सम्पूर्ण विश्वास हो गया। उन्होंने हृदय से स्वामीजी को अपना गुरु स्वीकार किया। स्वामीजी भी देखते कि निवेदिता शान्तिपूर्वक व्याख्यान सुनकर चली जाती। निवेदिता की सौम्यता और आध्यात्मिक तीव्र उत्कंठा ने स्वामीजी को प्रभावित किया। वे उसके व्यक्तित्व में छिपे सच्चे गुणों को देख रहे थे, जिससे

(शेष भाग पृष्ठ १४२ पर)

काशी के बनबाबा (३)

स्वामी अप्रमेयानन्द, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

(प्रस्तुत निबन्ध का मूल बांगला से हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन साधना कुटीर, ओंकारेश्वर के स्वामी उरुक्रमानन्द जी ने किया है।)

सन् १९३६ ई. में अनंग महाराज (स्वामी ओंकारनन्दजी महाराज) बनबिहारी महाराज को देखकर बोले, ''बनबिहारी, तुम क्या इस तरह ही रहोगे? संन्यास ग्रहण नहीं करोगे?'' बनबिहारी का सहज-सरल उत्तर था, ''पूजनीय महापुरुष महाराज ने मुझे गेरुआ वस्त्र दिया था।'' ओंकारानन्दजी ने कहा, ''यह सत्य है कि महापुरुष महाराज ने तुम्हें गेरुआ वस्त्र दिया है, फिर भी संन्यास दीक्षा की आवश्यकता है । तुम बेलूड़ मठ में संन्यास के लिये आवेदन करो।''

सन् १९३७ ई. में स्वामी विज्ञानानन्दजी महाराज संघगुरु थे। ब्रह्मचारी बनबिहारी का आवेदन देखकर पूजनीय महाराज ने मुस्कुराकर कहा, 'बनबिहारी तो वन में रहेगा, यहाँ क्यों? और दादा (महापुरुष महाराज) ने तो तुम्हें गेरुआ वस्त्र दे ही दिया है, आओ, मैं तुम्हारी शिखा काट देता हूँ।'' इसके बाद किसी शुभ मुहूर्त में अन्य ब्रह्मचारीगण के साथ बनबिहारी महाराज की भी शिखा-सूत्र की आहूति देकर, विरजा होम के अन्त में संन्यास हुआ और उनका नाम हुआ स्वामी मुक्तानन्द।

बेलूड़ मठ से काशी वापस आकर वे डेढ़ वर्षों के लिये उत्तर काशी जाकर तपस्यारत थे एवं पुन: लौटकर गुरु के निर्देशानुसार सम्पूर्ण मन-प्राण से रोगी-नारायण की सेवा में संलग्न हो गये। इसके कुछ वर्षों के पश्चात ६-७ संगियों के साथ अल्मोड़ा होते हुए दुर्गम पहाड़ों को चढ़कर देवाधिदेव कैलासपति का दर्शन तथा पूजन करके आये थे। परवर्ती काल में जब वे चल नहीं पाते थे, तो कहते थे कि इन्हीं पैरों से ही १९,००० फीट ऊँचे चढ़कर कैलास जाकर मैंने शिवपूजा की थी और अब तो चलने में ही कितना कष्ट होता है।

एक बार सेवाश्रम में किसी विषय पर मनमुटाव हुआ था और वे रामकृष्ण मिशन, रंगून में चले गये थे। तब वहाँ एक बड़ा अस्पताल था। स्वामी श्यामानन्दजी महाराज वहाँ के सचिव थे। रंगून में अधिक दिन वे रह नहीं सके। एक वर्ष के भीतर ही वे पुन: काशी चले आये। रंगून में रहते समय मैगोट रोगी Maggot Patient की चिकित्सा किस प्रकार की जाती है, वे ठीक तरह से सीख गये थे एवं परवर्ती काल में काशी में इस रोग के रोगी-नारायणों की सेवा करके उन्हें स्वास्थ्य लाभ करवाया था। रंगूनवास प्रसंग के विषय में वे दुख से कहते थे – गुरुवाक्य को न मानकर रंगून जाकर मुझे बहुत कष्ट हुआ था। इसके बाद वे कभी काशी छोड़कर कहीं गये ही नहीं।

सन् १९७५ ई. तक उन्होंने प्राय: रोज ही विश्वनाथ, अन्नपूर्णा माँ तथा केदारनाथ का दर्शन किया था। बाद में घुटने में osteoarthritis होने से वे अन्य कहीं जा नहीं पाते थे। आश्रम में स्थित लवेश्वर शिव की पूजा करते थे तथा नारायण सेवा करने जाते थे।

मैं जब सेवाश्रम में सेवा हेतु आया तब महाराज घुटने मोड़ नहीं पाते थे और चलने में बहुत कष्ट होता था। तब भी देखता था कि नाश्ता करने के बाद ही apron पहनकर लाठी लेकर धीरे-धीरे सुबह ८ बजे के पहले ही ड्रेसिंग रूम में पहुँचकर ड्रेसिंग करने के उपकरणों को सजाते रहते थे। नरेन्द्र नाम का एक लड़का महाराज की सहायता करता था। जो घाव (bedsore) बड़े-बड़े डॉक्टर ठीक नहीं कर पाते, उन रोगी-नारायणों को बनबाबा के पास लाकर डॉक्टर कहा करते थे, 'बाबा, इनको एक बार देख लीजिए।'' महाराज भी हँसते हुए कहते, ''ठीक है।'' उसके बाद धैर्य, आन्तरिक सहानुभूति, प्रेम और श्रद्धा के साथ रोगी-नारायण की सेवा करते थे, कुछ दिनों में ही क्षत-विक्षत घाव ठीक हो जाता था । ड्रेसिंग करने के बाद बैंडेज को नहीं फेंकते थे, बल्कि साबुन-सोडा से धोकर और डेटाल से पुन: धोकर सुखाते थे। दूसरे दिन आकर बैंडेज को रोल करके, ठीक से काँट-छाँटकर पुन: उपयोग में लाने योग्य बनाते थे। इस प्रकार एक बैंडेज को ४-५ बार उपयोग करते थे। इससे गरीब रोगी-नारायण का खर्चा बचाते थे। महाराज को अस्पताल में पहुँचाकर उनके कार्य में थोड़ी सहायता कर मैं सर्जिकल वार्ड में रोगी-नारायण की सेवा करता था। महाराज से ड्रेसिंग के बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी मैंने प्राप्त कर ली थी। कई बार किसी-किसी समय नारायण-सेवा करने का सौभाग्य भी मुझे मिला था। इस विषय में विशेष तौर पर पूजनीय गोष्ट महाराज (स्वामी अभेदानन्दजी महाराज से दीक्षित) की

बात स्मरण हो आती है। उनके शरीर पर अनेक स्थानों पर वार्धक्य के कारण घाव हो गये थे। मैं देखता था, बनबाबा कितने प्रेम से उनसे बातचीत करते हुए उनकी शुश्रूषा करते थे, जिसे देखकर ऐसा लगता था कि कोई माँ अपनी सन्तान की बड़ी ममतापूर्वक सेवा कर रही है।

अन्य सम्प्रदायों की महिलाएँ भी उनके पास आकर नि:संकोच वार्तालाप करती थीं। वे भी निर्विकार मन से सबकी सेवा करते थे। बाद में जब खड़े होकर ड्रेसिंग नहीं कर पाते थे, तब व्हील चेयर पर बैठकर अस्पताल जाकर एक ऊँचे स्टूल पर बैठते थे। सब लोगों की धारणा थी कि महाराज के स्पर्श से ही रोग ठीक हो जाएगा। वे भी ठाकुर का नाम लेकर वैसा ही करते थे।

महाराज के आदेशानुसार दोपहर के उपरान्त मैं उन्हें ड्रेसिंग रूम ले जाता था। वापस आने में करीब १ या डेढ़ बज जाता था। कभी-कभी उस समय रोगी-नारायण के उपस्थित होने पर मैं कहता था, ''इतनी देरी से क्यों आये हो? अब तो सब बन्द हो गया है। कल ठीक समय पर आना।'' तब महाराज जोर देकर कहते थे, ''नहीं, उसकी सेवा करके ही जाऊँगा।'' मैं तब क्या कर सकता था? अनिच्छा से आलमारी खोलकर सब कुछ महाराज को दे देता था एवं वे भी रोगी-नारायण की ठीक से ड्रेसिंग करके ही तृप्त होते थे। लौटते समय मुझे समझाते थे, ''भाई, वह व्यक्ति किसी कारणवश ठीक समय पर आ नहीं सका। अभी यदि उसकी ड्रेसिंग न की जाए, तो उसका कष्ट तो दूर होगा नहीं, तथा आने-जाने का खर्च भी व्यर्थ होगा। मेरे बारे में चिन्ता क्यों करते हो? यह शरीर जितने भी दिन ठाकुर-स्वामीजी की सेवा करे, उससे ही मंगल होगा।' अब सोचता हूँ कि मैं भी कैसे बुद्धू के समान बात करता था। काशी की असह्य गर्मी में ८७-८८ वर्ष के बनबिहारी महाराज स्वयं के खाने-पीने तथा विश्राम की बात का विस्मरण कर निर्विकार मन से सेवा करते थे। वास्तव में, हम तो रोगी देखते थे और वे नारायण बोध से ही सेवा करते थे। इसीलिए वे हमेशा आनन्दमय रहते थे। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि दोपहर २ बजे उन्हें स्नान कराकर, भोजन के लिये बैठाया गया हो, उसी समय कहते, ''भाई, ऐसा लगता है कि कोई गम्भीर रोगी-नारायण आया है। तुम थोड़ा जाकर देख आओ।'' मैं कहता, ''वहाँ पर डॉक्टर बैठे हैं, मैं आपको खिलाकर जाता हूँ।'' परन्तु मैं देखता कि वे उद्विग्न हो गये हैं और कहते, ''नहीं भाई, तुम पहले जाकर देख आओ। अन्यथा मैं खा नहीं सकूँगा।'' मैं दौड़कर आपातकाल कक्ष में जाकर देखा कि रोगी-नारायण की अवस्था ठीक नहीं है। डॉक्टर उस समय किसी अन्य वार्ड में थे। आवश्यक चिकित्सा की गयी, बाद में डॉक्टर आए। तब तक रोगी-नारायण थोड़ा स्वस्थ अनुभव करने लगा। उसे जो भी इंजेक्शन दिये गये थे, इन्हें डॉक्टर को बताकर महाराज के पास आकर सब बताया। तभी वे शान्तिपूर्वक भोजन कर सके। इस तरह की घटनाएँ एक-दो बार नहीं, अपितु न जाने कितनी बार रात और दिन में घटती थीं।

महाराज के आदेशानुसार मैं रात का भोजन कर उन्हें खिलाता था। वे भोजन करने के बाद पान खाते हुए ऑपरेशन का हिसाब लेकर बैठते थे। इसी समय मैं वार्ड में जाकर रात का दौरा करके रोगी-नारायणों की स्थिति उन्हें बताता था। किसी-किसी दिन वापस आने में १ घंटा से भी अधिक लग जाता था। किन्तु आने पर मैं देखता कि महाराज तब भी हिसाब का खाता लेकर बैठे हैं। एक दिन मैंने उनसे पूछा, ''महाराज, क्या हुआ?'' वे बोले, ''भाई, हिसाब नहीं मिल रहा है?'' महीना समाप्त हो रहा है, रिपोर्ट जमा करना बाकी है। हिसाब मिला देने पर खुश होकर कहते, ''अब चलो सो जाएँ, तुम्हें तो सुबह जल्दी उठना है।'' लगभग ८८ वर्ष की उम्र तक स्वेच्छा से उन्होंने यह सेवा की थी। **(क्रमश:)**

(पृष्ठ १४० का शेष भाग)

निवेदिता अनभिज्ञ थीं।

इंग्लैण्डवासियों को वेदान्त से परिचय कराकर स्वामीजी ६ दिसम्बर, १८९५ को पुन: अमेरिका चले गये। उन्होंने अपने भावी कार्यों हेतु वहाँ भूमि तैयार कर ली थी। इधर निवेदिता स्वामीजी की उदार धार्मिक भावना, सर्वधर्म-समन्वयभाव, उनका बौद्धिक, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण, सत्य और पवित्रता से प्रभावित होकर उनके चरणों में समर्पित हो गईं और उनके निर्देशन में आध्यात्मिक साधनामय सानन्द जीवनयापन करने लगीं। अब उनके अध्ययन-कक्ष में बाइबिल के साथ साथ श्रीमद्भगवद्गीता-उपनिषद जैसे ग्रन्थ भी रहने लगे।

समाचार और सूचनाएँ

बेलूड़ मठ, संचालन समिति २०१४-२०१५ का संक्षिप्त विवरण

रामकृष्ण मिशन की १०६वीं वार्षिक साधारण सभा बेलूड़ मठ में रविवार २७ दिसम्बर, २०१५ को दोपहर ३.३० बजे आयोजित की गई।

युनेस्को ने रामकृष्ण मिशन के साथ अन्तर्सांस्कृतिक परिचर्चा, सामाजिक एकता, शान्ति एवं अहिंसा संवर्धन के क्षेत्र में ६ वर्षों के लिए औपचारिक सम्बन्ध स्थापित किया है। 'मानवीय उत्कृष्टता तथा समाज-विज्ञान' के प्रस्तावित केन्द्र **'विवेक तीर्थ'** राजारहाट, न्यू-टाउन, कोलकाता की आधार शिला पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री के करकमलों द्वारा रखी गयी। 'अन्तर्राष्ट्रीय मधुमेह संगठन' (आ.डी.एफ.) ब्रुसेल्स, बेल्जियम ने **वृन्दावन** केन्द्र के 'अधिकृत, मधुमेह-प्रशिक्षक-भारत (CDEI) कार्यक्रम' में स्वास्थ्य संरक्षक प्रशिक्षकों को मधुमेह सम्बन्धित उत्कृष्ट शिक्षा देने के कारण मान्यता प्रदान की है। (रिपोर्ट के पृष्ठ क्र. १ में विस्तृत विवरण)

शिलॉंग केन्द्र 'क्राइस्ट स्कूल इंटरनेशनल' तथा 'डॉन बास्को फॉर इन्डिजीनियस कल्चर' द्वारा उत्तोर पूर्वीय क्षेत्रों में किये गये उत्कृष्ट सेवाकार्यों के लिये 'युवा तथा शिक्षा पारितोषिक २०१४' से पुरस्कृत किया गया। 'स्वच्छता' – भारतीय परम्परा का एक प्रमाणक चिन्ह – भारत सरकार द्वारा सुनियोजित मान्यता प्राप्त स्वच्छ भारत अभियान के अन्तर्गत सभी केन्द्रों ने अपने आस-पास के क्षेत्रों में साफ-सफाई कर इस अभियान में उत्साहपूर्वक भाग लिया। (रिपोर्ट के पृष्ठ क्र. २-५ में विस्तृत विवरण)

देश के विभिन्न क्षेत्रों में २०१०-२०१४ तक का चतुर्वर्षीय सेवा कार्यक्रम संचालित किया गया। इन सभी केन्द्रों में सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त सेवा उपक्रमों में ९३ करोड़ रु. खर्च किये गये। यहाँ उसका संक्षिप्त विवरण संलग्न है।

हिमालचल प्रदेश में रामकृष्ण मिशन का एक नया शाखा-केन्द्र **शिमला** में प्रारम्भ किया गया। रामकृष्ण मिशन आश्रम, सारगाछी का एक नया उपकेन्द्र 'सेवाव्रत' ग्राम **बैरगाछी,** जिला मुर्शिदाबाद, पश्चिम बंगाल में प्रारम्भ किया गया। भारत के बाहर जेसोर (बंगलादेश) में मिशन का एक नया उपकेन्द्र **'नाराइल'** प्रारम्भ किया गया। (रिपोर्ट का पृष्ठ क्र.५)

शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित **नवीन विकास उपक्रमों** का विशेष उल्लेख करना आवश्यक है –

१. आलो (Aalo) (अरुणाचल प्रदेश), चेन्नई मिशन आश्रम, (तमिलनाडु), तथा देवघर, (झारखण्ड) केन्द्र के हमारे विद्यालयों में Smart Classes सुविधाओं (Computer Aided Teaching Tool) की शुरूआत की गई।

२. **करीमगंज** (आसाम) केन्द्र में संगणक केन्द्र शुरू किया गया।

३. **दिल्ली केन्द्र** ने दिल्ली, NCR, भोपाल, हैदराबाद, चेन्नई तथा कलकत्ता के ७०० CBSE विद्यालयों के १७०० शिक्षकों को विद्यार्थियों को गुणवत्ता आधारित शिक्षा देने हेतु प्रशिक्षित किया।

४. **गोहाटी केन्द्र** ने आसामी भाषा में 'विवेक भास्कर' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। (रिपोर्ट के पृष्ठ क्र. ६ पर विस्तृत विवरण)

चिकित्सा के क्षेत्र में निम्नलिखित नवीन उपलब्धियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं –

१. **लखनऊ** अस्पताल में दो Modular Operation Theatres सभी अत्याधुनिक सुविधाओं सहित तथा एक नवीन Acupuncture Clinic का आरम्भ। २. **सेवा प्रतिष्ठान कोलकाता** में एक Cardiac Care Unit (हृदय रोग संरक्षक केन्द्र) जिसमें High Dependency Unit, तथा Cath Lab तथा Cardio-thoracic Vascular Surgery Unit का समावेश है।

३. **वृन्दावन** केन्द्र ने एक नया आपताकालीन केन्द्र प्रारम्भ किया। ४. **दिल्ली केन्द्र** ने अपने TB clinic के Fundus Fluorescein Angiography (FFA) उपकरणों को उन्नत किया। (रिपोर्ट के पृष्ट क्र. ७-८ पर विस्तृत विवरण)

ग्रामीण विकास क्षेत्र में निम्नलिखित **नवीन उपक्रम** विशेष उल्लेखनीय हैं –

१. **राँची** (मोराबादी) केन्द्र ने IWMP (Intergrated Watershed Management Programme) के अन्तर्गत २२८ पर्कोलेसन टैंक्स (स्त्रावी जलकुंडों) का निर्माण, अंगारा ब्लाक के पिप्राबेरा, सिम्राबेरा, रुप्रु एवं झरनापानी गाँवों में गुरुत्व सिंचन संयंत्र का निर्माण (जिसमें विद्युत शक्ति की आवश्यकता नहीं होती)

२. **राजमण्ड्री** केन्द्र ने आन्ध्रप्रदेश के पूर्व गोदावरी जिले के रामपाचोदवरम में स्थानीय आदिवासियों के लिए एक जल-शोधन संयत्र को संस्थापित किया जिसकी क्षमता २००० लीटर प्रति घंटा है।

३. **नारायणपुर** केन्द्र ६ने गाँवों के १०५ हेक्टेयर भूमि-विकसन हेतु विभिन्न योजनाओं की शुरूआत की तथा ६०० बच्चों की मदद हेतु २० आँगनबाड़ीयाँ आरम्भ की। (रिपोर्ट के पृष्ठ क्र. ९ पर विस्तृत विवरण)

मठ के अन्तर्गत निम्नलिखित नवीन योजनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं –

१. **बागबाजार** केन्द्र (पश्चिम बंगाल) में माँ सारदा व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र का प्रारम्भ।

२. **पलाई** (केरल) आश्रम में नवनिर्मित होम्योपैथिक डिस्पेन्सरी उद्घाटन।

३. **पोन्नमपेट** (कर्नाटक) केन्द्र में व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र का प्रारम्भ, जहाँ सिलाई, हाथकरघा, गाड़ी चलाना, तथा प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र में सहायक हेतु प्रशिक्षण दिया जायेगा।

४. **वड़ोदरा** (गुजरात) केन्द्र में पुनर्निर्मित दिलाराम बंगला (जो १८९२ में स्वामीजी के पावन निवास से पवित्र है) का उद्घाटन हुआ। (रिपोर्ट के पृष्ठ क्र. १०-११ में विस्तृत विवरण)

भारत के बाहर **विदेशों में** निम्नलिखित नवीन विकास योजनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं –

१. **कोलम्बो** केन्द्र ने श्री पोन्नमबाला बाणेश्वर मन्दिर में स्वामीजी की कांस्य प्रतिमा का अनावरण किया, जहाँ स्वामीजी ने १८९७ में दर्शन किया था।

२. **सैक्रामेंटो** केन्द्र ने स्वर्ण जयन्ती मनायी।

३. **फिजी** केन्द्र ने स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय में नवनिर्मित सार्वजनीन ध्यान केन्द्र का उद्घाटन। (रिपोर्ट के पृष्ठ क्र. १२-१३ में विस्तृत विवरण)

इस वर्ष **मिशन** ने सेवा-कार्यों के अन्तर्गत निर्धन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान की , हृदय, रोगी तथा निराश्रित लोगों को आर्थिक सहायता प्रदान की। (इसमें लगभग ८.२२ लाख लोग लाभान्वित हुए। कुल खर्च १४.७४ करोड़ रुपये । (विस्तृत विवरण पृष्ठ क्र. २२-२३)

८१.६२ लाख से भी अधिक लोगों को १० अस्पातालों, ७४ धर्मार्थ औषधालयों, ४४ सचल चिकित्सा इकाईयों तथा ९६३ चिकित्सा शिविरों के माध्यम से चिकित्सा सुविधायें प्रदान की गयीं। कुल खर्च १६७.०८ करोड़ रुपये। (पृष्ठ संख्या २४-२६)

करीब ३.१८ लाख विद्यार्थी हमारे शिक्षा संस्थानों में, शिशु वर्ग से लेकर महाविद्यालयीन स्तर तक अध्ययनरत हैं। उन्हें अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों, रात्रिकालीन पाठशालाओं तथा शैक्षणिक कक्षाओं के माध्यम से शिक्षा दी जा रही है। इसमें लगभग २६७ करोड़ रु. की राशि खर्च की गई। (पृष्ठ संख्या २६-३०)

अन्य कई **ग्रामीण तथा आदिवासी जनजातीय विकास योजनायें** आश्रम द्वारा संचालित हैं, जहाँ कुल व्यय ११.७४ करोड़ रु. तथा १६.९६ लाख ग्रामीण जनता लाभान्वित हुई। (पृष्ठ संख्या ३०-४२)

मिशन तथा मठ देश के विभिन्न भागों में अन्य कई राहत तथा पुनर्वसन कार्य कर रहे हैं, जिसमें कुल ६.३४ करोड़ रु. खर्च हुए तथा १.१८ लाख परिवारों के २.९८ लाख लोग लाभान्वित हुए। (रिपोर्ट की पृष्ठ संख्या १९-२२)

हम अपने माननीय सदस्यों और मित्रों को उनके उदारतापूर्ण सहयोग के लिये हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

२७ दिसम्बर २०१५

(स्वामी सुहितानन्द)
महासचिव

स्वामी विवेकानन्द की स्मृति में १५०वीं जन्मशताब्दी उत्सव

केन्द्र सरकार द्वारा अनुदानित सेवा योजनाओं की ८.१०.२०१० से ३१.१०.२०१४ की अन्तिम रिपोर्ट

१. गदाधर अभ्युदय प्रकल्प (सर्वांगीण बालविकास प्रकल्प) - २३ राज्यों में १७४ इकाईयों द्वारा लगभग १८,३०० बच्चे लाभान्वित हुए। कुल २५.९५ करोड़ रु. की राशि खर्च हुई।

२. विवेकानन्द स्वास्थ्य परिसेवा प्रकल्प (माता तथा शिशुओं के लिये स्वास्थ्य सेवा परियोजना) - २२ राज्यों में १२६ इकाईयों के माध्यम से १३,७०० मातायें तथा बच्चे लाभान्वित हुए। कुल १७.९८ करोड़ रु. की राशि खर्च हुई।

३. सारदा पल्ली विकास प्रकल्प (महिला स्व-सशक्तीकरण योजना) - ८ राज्यों में ११ ग्रामों में कार्यन्वित। कुल ३१९४ महिलायें लाभान्वित हुई। २.०४ करोड़ रुपये खर्च हुए।

४. स्वामी अखण्डानन्द सेवा प्रकल्प (गरीबी उन्मूलन हेतु) – ७ राज्यों में १२ इकाईयों के द्वारा कुल ३१०९ लोग लाभान्वित हुये। २.०१ करोड़ रुपये खर्च हुए।

५. विशिष्ट सेवा कार्यक्रम (व्यवसायिकों तथा अभिभावकों के लिये) - १३ राज्यों में कुल ५०,८६३ अभिभावक तथा व्यावसायी लाभान्वित हुए। कुल९९.३२ लाख रूपये खर्च हुए।

६. प्रकाशन प्रचार माध्यम प्रकल्प (Print Media Project) कुल ४९.५५ लाख पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिसमें स्वामी विवेकानन्द की संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश २४ भारतीय तथा ३ विदेशी (जर्मन, जपानी तथा झुलु) भाषाओं में, भारत के राष्ट्रीय नेताओं पर लिखी गयी पुस्तकों की ७५,००० प्रतियाँ,भारत के सांस्कृतिक धरोहर - ११०० सेट (८ खंड), स्वामी विवेकानन्द साहित्य - १२०० सेट (९ खंड) आदि का समावेश है। कुल ६.१६ करोड़ रुपये खर्च हुए।

७. युवकों के लिये विशेष कार्यक्रम – १२ शहरों में युवा परामर्श केन्द्र ने ३ राष्ट्रीय स्तर, ६ क्षेत्रीय स्तर तथा १८ राज्य स्तरीय युवा-सम्मेलनों के आयोजन द्वारा ४८,७१४ युवकों का मार्गदर्शन किया, जिनमें कुल ८८, ६०० युवकों ने भाग लिया। निबन्ध लेखन प्रतियोगिता, सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता आदि का १ राष्ट्रीय स्तरीय, ४ क्षेत्र स्तरीय तथा १३ राज्य स्तरीय आयोजन हुआ, जिनमें कुल ४,५७,३०४ प्रतियोगियों ने भाग लिया।

वर्गीकृत गुणवत्ता शिक्षा कार्यक्रम Sustained Graded Value Education (SGVE) का संचालन –

(अ) १४ राज्यों में ३९७ इकाईयों (अनौपचारिक) के माध्यम से २४६ संस्थाओं के १७,९०४ छात्रों ने भाग लिया।

(ब) १८ राज्यों में २,६९२ इकाईयों (क्लासरूम आधारित), ७७४ पाठशालाओं के १,२३, १६५ छात्रों ने भाग लिया, जिसमें २८,७४ करोड़ रुपये खर्च हुए।

८. इलेक्ट्रोनिक संचार माध्यम प्रकल्प (Electronic Media) सभी विवेकानन्द के उपदेशों पर आधारित 'भारतीय नारियाँ' तथा 'एक कवि, मानव एवं संन्यासी' शीर्षक वृत्तचित्र तैयार किए गए। 'व्यक्तित्व विकास पर एक इलेक्ट्रॉनिक पुस्तक (E-Book) 'शिक्षा पर एक मल्टीमिडिया प्रस्तुतिकरण, अभावग्रसतों के लिये 'उदयोन्मुख भारत' एक डाक्यूमेंटरी बनाई गयी, २६ प्रकरणों का 'विवेकानन्द के उत्तर' युवकों के लिये संवादात्मक कार्यक्रम, दूरदर्शन पर प्रसारित किया गया। इसमे कुल २.८७ करोड़ रु. खर्च हुए।

९. सांस्कृतिक कार्यक्रम योजनायें - २ अन्तर्राष्ट्रीय, १ राष्ट्रीय, ३ क्षेत्रीय स्तर, १० राज्य स्तर, ५ क्षेत्रीय स्तर के सेमिनार '२१वीं शतब्दी की चुनौतियों से निपटने के लिये विवेकानन्द की प्रासंगिकता', 'धार्मिक समन्वय' तथा 'अनेकता में एकता' आदि विषयों पर आयोजित किये गये। १९ शास्त्रीय संगीत कार्यक्रमों का भी आयोजन हुआ। इनमें कुल ५.३४ करोड़ रु. खर्च हुए।

कुल मिलाकर ९३ करोड़ रु. की राशि इन सभी योजनाओं में व्यय की गई। (रिपोर्ट के पृष्ठ क्रमांक २-६ में विस्तृत विवरण)

विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर में विविध कार्यक्रम आयोजित हुए

विवेकानन्द युवा-सम्मेलन का आयोजन

२३ और २४ दिसम्बर, २०१५ को संस्कृति विभाग, छत्तीसगढ़ शासन के सहयोग से विवेकानन्द, विद्यापीठ, कोटा, रायपुर द्वारा एक युवा सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें ६०० से अधिक युवक-युवतियों ने उत्साह से भाग लिया। सम्मेलन का उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि छत्तीसगढ़ के राज्यपाल माननीय बलरामजी दास टण्डन जी के कर-कमलों से हुआ। समारोह की अध्यक्षता रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायपुर के सचिव स्वामी व्याप्तानन्द जी ने की। २३ और २४ दिसम्बर को सम्मेलन के विभिन्न सत्रों में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी के स्वामी निखिलात्मानन्द, रामकृष्ण मठ, मुम्बई के अध्यक्ष स्वामी सर्वलोकानन्द, रामकृष्ण मिशन, ग्वालियर के स्वामी राघवेन्द्रानन्द, पं. सुन्दरलाल शर्मा विश्वविद्यालय, बिलासपुर के कुलपति डॉ. बंश गोपाल सिंह, 'वेदान्त केसरी' अँग्रेजी मासिक पत्रिका के सम्पादक स्वामी आत्मश्रद्धानन्द, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, संस्कृति विभाग की प्रो. राजलक्ष्मी वर्मा, उच्च न्यायालय, बिलासपुर के वरिष्ठ अधिवक्ता एवं चिन्तक श्री कनक तिवारी, पं, रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर की इतिहास विभागाध्यक्ष प्रो. आभा रुपेन्द्र पाल, डॉ. सच्चिदानन्द जोशी, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के संकायाध्यक्ष, डॉ सच्चिदानन्द जोशी, रामकृष्ण सेवा समिति, दमोह के सचिव डॉ. केदार शिवहरे, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अधिवक्ता श्रीरविराज सिंह और पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर के विवेकानन्द स्मृति तुलनात्मक एवं दर्शन विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. लक्ष्मण प्रसाद मिश्र ने युवक-युवतियों को नैतिक चरित्र निर्माण में सहायक महत्वपूर्ण विषयों पर व्याख्यान दिया।

२४ दिसमबर, २०१५ को समारोह के समापन सत्र के मुख्य अतिथि थे राजनांदगाँव के यशस्वी युवा सांसद श्री अभिषेक सिंह। उन्होंने युवाशक्ति को अपने प्रेरक व्यक्तिगत अनुभवों से अवगत कराया। पं. रविशंकर विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. एस. के. पाण्डेय जी ने अध्यक्षता की। कार्यक्रम के सफल संयोजन में डॉ. सुभाषचन्द्राकर, श्रीराकेश चतुर्वेदी, डॉ. प्रीतालाल, डॉ. बी. एल. सोनकर, रश्मि पटेल, एच. डी. प्रसाद और मनोज यादव ने महत्वपूर्ण सहायता की।

व्याख्यान आयोजित हुए

६ अक्टूबर, २०१५ को 'स्वामी आत्मानन्द स्मृति व्याख्यान' आयोजति किया गया, जिसमें स्वामी निखिलत्मानन्द, स्वामी व्याप्तानन्द और कनक तिवारी और डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने व्याख्यान दिये। कार्यक्रम की अध्यक्षता स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने की।

सार्वजनिक सभा और पुरस्कार वितरण समारोह

स्वामी विवेकानन्द ग्रामीण विकास समिति, बरबन्दा, रायपुर के तत्त्वावधान में ७ अक्टूबर, २०१५ को आयोजित सार्वजनिक सभा में स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी निखिलात्मानन्द, डॉ. ओमप्रकाश वर्मा और धरसींवा के विधायक देवजी भाई पटेल ने व्याख्यान दिये। इन्हीं कर-कमलों से छात्र-छात्राओं को पुरस्कार प्रदान किया गया। ○○○